सङ्युक्ताङ्कः
वर्षम् - ११, अङ्कः - १४१

ओ३म्

चैत्र-आषाढमासौ-२०७७
अप्रैल-जुलाई-२०२०

आर्ष-ज्योतिः

ज्योतिष्कृणोति सूनरी

श्रीमद् दयानन्द वेदार्ष-महाविद्यालय-न्यास का द्विभाषीय मासिक मुखपत्र

स्मृतियों से (वर्ष २०००)...

गुरुकुल पौन्धा देहरादून में यज्ञशाला-भूमिपूजन के अवसर पर उपस्थित
गुरुवर्य पूज्य पण्डित भीमसेन वेदवागीश जी, पूज्य स्वामी सत्यपति जी,
पूज्य स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती जी एवं आचार्या डॉ. अन्नपूर्णा जी

प्रसारणकार्यालयः -

श्रीमद्दयानन्दार्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुलम्, पौन्धा, देहरादूनम्

९४१११०६१०४, ८८१०००५०९६

arsh.jyoti@yahoo.in gurukulpondhadehradun www.pranwanand.org

स्थापनादिवस एवं यजुर्वेद पारायण महायज्ञ के छायाचित्र

❖ ओ३म् ❖

आर्ष-ज्योतिः

श्रीमद्दयानन्द वेदार्ष-महाविद्यालय-न्यास

का

द्विभाषीय मासिक मुखपत्र

चैत्र-आषाढमासौ, विक्रमसंवत्-२०७७ / अप्रैल-जुलाई-२०२०, सृष्टिसम्वत्-१,९६,०८,५३,१२१

वर्षम्-११ :: अङ्कः-१४१ मूल्यम्-रु. ५ प्रति, वार्षिकम्-५०

❖संरक्षकाः❖

स्वामी प्रणवानन्दः सरस्वती

कै. रुद्रसेन आर्यः

प्रो.देवीप्रसादत्रिपाठीवर्याः

श्रीगिरीश-अवस्थीवर्याः

❖परामर्शदातृमण्डलम्❖

डॉ. रघुवीरवेदालङ्कारः

प्रो. महावीरः

आचार्ययज्ञवीरवर्याः

श्रीचन्द्रभूषणशास्त्री

❖मुख्यसम्पादकौ❖

डॉ. धनञ्जय आर्यः

डॉ. रवीन्द्रकुमारः

❖कार्यकारी सम्पादकः❖

ब्र. शिवदेवार्यः

❖व्यवस्थापकाः❖

ब्र. आकाशार्यः

ब्र. त्रिजकिशोरार्यः

ब्र. सुधांशुः

❖कार्यालयः❖

श्रीमद्दयानन्द-आर्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुलम्

दूनवाटिका-२, पौन्धा,

देहरादूनम् (उत्तराखण्डः)

दूरवाणी - ०९४१११०६१०४,८८१०००५०९६

website: www.pranwanand.org

E-mail : arsh.jyoti@yahoo.in

विषय-क्रमणिका

विषयः	पृष्ठः
आर्य्याभिविनयः	२
सम्पादकीय	३
ऋषि-मीमांसा (ऋषित्व का दर्शन)	६
यज्ञ में मन्त्रों से आहुति क्यों?	१३
मांस खाने न खाने का विचार...	१७
चरित्रनिर्माण किये बिना देशोन्नति सम्भव नहीं	२२
योगदर्शनशिक्षणम्	२५
संस्कृतशिक्षणम्	२६
गुरुकुल पौन्धा का स्थापना दिवस निर्विघ्न सम्पन्न	३०

सूचना - कोरोना (केविड-१९) के कारण से अप्रैल मास से पत्रिका प्रकाशित न हो सकी, अब विलम्ब से प्रकाशित होकर आपकी सेवा में प्रेषित की जा रही है, कोरोना के कारण शायद कुछ क्षेत्रों में यह अंक डॉक माध्यम से नहीं प्राप्त हो पायेगा, इसके लिए हमें खेद है। **- आचार्य डॉ. धनञ्जय**

न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशनतिथि-३ जुलाई २०२० :: डाकप्रेषणतिथि-८ जुलाई २०२०

आर्य्याभिविनयः

(९)

ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः।**देवता**- इन्द्रः।**छन्दः**- आर्च्युष्णिक्।**स्वरः**- ऋषभः।

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्य्याणाम्। इन्द्रं सोमे सचा सुते॥ ऋग्वेद १/५/२॥

पुरूऽतमम्। पुरूणाम्। ईशानम्। वार्य्याणाम्। इन्द्रम्। सोमे। सचा। सुते॥

आर्याभिविनयः-

हे परात्पर परमात्मन्! आप **(पुरूतमम्)** अत्यन्तोत्तम और सर्वशत्रुविनाशक हो। तथा **(पुरूणाम्)** बहुविध जगत् के पदार्थों के **(ईशानम्)** स्वामी और उत्पादक हो **(वार्य्याणाम्)** वरणीय परमानन्द मोक्षादि पदार्थों के भी ईशान हो और **(सोमे)** उत्पत्तिस्थान संसारे आपसे **(सुते)** उत्पन्न होने से **(सचा)** प्रीति पूर्वक हम **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्य्यवान् आपको **(अभिप्रगायत)** हृदय में अत्यन्त प्रेम से गावें, यथावत् स्तुति करें। जिससे आपकी कृपा से हम लोगों का भी परमैश्वर्य बढ़ता जाए और हम परमानन्द को प्राप्त हों॥

अन्वयः-

हे सखायो विद्वांसो वार्य्याणां पुरूतममीशानं पुरूणामिन्द्रमभिप्रगायत ये सुते सोमे सचाः सन्ति तान् सर्वोपकाराय यथायोग्यमभिप्रगायत॥

पदार्थः-

(पुरूतमम्) पुरून् बहून् दुष्टस्वभावान् जीवान् पापकर्मफलदानेन तमयति ग्लापयति तं परमेश्वरं तत्फलभोगहेतुं वायुं वा। **पुरुरिति बहुनामसु पठितम्।** (निघण्टु ३.१) अत्र **अन्येषामपि दृश्यत** इति दीर्घः। **(पुरूणाम्)** बहूनामाकाशादिपृथिव्यन्तानाम् पदार्थानाम् **(ईशानम्)** रचने समर्थं परमेश्वरं तन्मध्यस्तविद्यासाधकं वायुं वा **(वार्य्याणाम्)** वराणां वरणीयानामत्यन्तोत्तमानां मध्ये स्वीर्तुमर्हम्। **वार्य्यं वृणोतेरथापि वरतममं तद्वार्य्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्ययं तद्वार्य्यं वृणीमहे वर्षिष्ठं गोपायितव्यम्।** (निरुक्त ५.१) **(इन्द्रम्)** सकलैश्वर्यप्रदं परमेश्वरात्मनः सर्वभोगहेतुं वायुं वा **(सोमे)** सोतव्ये सर्वस्मिन् पदार्थे विमानादियाने वा। **(सचा)** ये समवेताः पदार्थाः सन्ति। **सचा इति पदनामसु पठितम्।** (निरुक्त ४.२) **(सुते)** उत्पन्नेऽभिषवविद्ययाऽभिप्राप्ते॥

संस्कृताभिविनयः-

हे परात्पर परमात्मन्! भवान् अत्यन्तोत्तमः सर्वशत्रुविनाशकश्चास्ति। तथा बहुविधानां जगतः पदार्थानां स्वामी ईशानोऽस्ति उत्पत्तिस्थानञ्च भवतः संसारोत्पन्नत्वात्, वयं प्रीतिपूर्वकं परमैश्वर्यवन्तं भवन्तं हृदि अत्यन्त प्रेम्णा गायाम यथावत् स्तुम। येन भवत्कृपयास्माकमपि परमैश्वर्यं प्रवर्द्धतां वयञ्च परमानन्दं प्राप्नुमः॥

- शिवकुमारः, गुरुकुलपौन्धा, देहरादूनम्

सम्पादक की कलम से...

भारत और चीन का सम्बन्ध

देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् से भारत का सम्बन्ध चीन के साथ एक सामान्य स्थिति में था। स्वतन्त्रता से पूर्व भी भारत का चीन के साथ दृढ़ सांस्कृतिक सम्बन्ध था। चीन में बौद्धधर्म का प्रचार भारत से ही हुआ था। 1947 के पश्चात् भारत और चीन के पंचशील समझौता हुआ था। इस समझौते में भारत ने चीन के मध्य पांच समझौतों पर परस्पर सहमति प्रकट की थी। तभी से भारत का राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित होता चला गया। पंचशील चीन व भारत द्वारा विश्व की शान्ति व सुरक्षा के लिए उठाया एक महत्त्वपूर्ण समझौता था। इसमें मुख्यत: पांच बिन्दु थे, जिस कारण यह पंचशील कहलाता है। इसमें कहा गया था कि एक-दूसरे देश की प्रभुसत्ता व प्रादेशिक अखण्डता का सम्मान, एक-दूसरे पर आक्रमण न करना, एक-दूसरे की आन्तरिक स्थितियों में हस्तक्षेप न करना, समानता और परस्पर सह अस्तित्व बनाये रखना था। भारत ने सदा इस पंचशील सन्धि का सम्मान किया और इस सन्धि को बनाये रखने पर कार्य किया।

चीन ने भारत को धोखा देते हुए सन् १९६२ में भारत पर अकस्मात् युद्ध कर दिया था। भारत को दृढ़ता से मैत्रीसम्बन्ध बनाये रखने का घाव मिला। भारत की सरकार ने १९६२ के युद्ध के समय तक भी चीनी हिन्दू भाई-भाई का उद्घोष किया। भारत के इस उद्घोष का चीन ने कोई आदर नहीं किया। भारत की इस आकस्मिक युद्ध में पराजय हुई, क्योंकि चीन ने अपनी राजनीतिक दृढता को ओर अधिक दृढ बनाने के लिए भारत की पूर्ववर्ती सरकारों के नेताओं को अपने वश में करने का षड्यन्त्र रचा। चीन जानता था कि भविष्य में भारत को युद्ध में हराना और विश्वपटल पर कमजोर करना आसान नहीं होगा। इसके लिए उसने भारत के नेताओं को अर्थ का लालच देकर अपने वश में करने का प्रयास किया। भारत के अनेक शीर्ष नेता, जिनका नैतिक कर्त्तव्य भारत को उन्नति पर ले जाना था, वे चीन के जाल में फंसकर उसका गुणगान करने लगे। छद्मरूप से चीन उनकी आर्थिक सहायता करने लगा। उस अर्थ का प्रयोग ये राजनीतिक लोग अपनी राजनीतिक जड़ों को भारत में मजबूत करने व अपनी सरकारों को बनाने में करने लगे तथ ये नेता चीन के द्वारा किये गये सहयोग के नीचे दब गये कि चीन के विरुद्ध कभी आवाज का साहस भी न कर सकें। चीन अपनी स्वेच्छा से भारत में अपना मुक्त व्यापार बढ़ा भारत के लोगों के बीच अपनी मजबूती बनाता चला गया। हम भारत के लोग सस्ते सामान के चक्र में फंसते चले गये और चीन हमारे इस लालच को बढ़ाता चला गया।

प्रिय पाठकवृन्द!

राष्ट्रवाद किसी राष्ट्र को उन्नति पर ले जाने के लिए सर्वप्रथम आवश्यक व अपरिहार्य हेतु होता है। भारत में राष्ट्रवाद को निरन्तर कमजोर करने के लिए यहाँ के लोगों की मानसिकता व यहाँ के पूर्वजों का शौर्यपूर्ण इतिहास परिवर्तित करने का सफल प्रयास किया गया। हम पर मुगलों व अंग्रेजों ने राष्ट्रवाद का हनन कर ही राज्य किया था। हमारे भारत की जनता सदा अपनी इस कमजोरी के कारण अनेक घाव झेलती

रही है। भारत को अपनी इस कमजोरी को दूर करने के लिए राष्ट्रवाद और अपने गौरवमय इतिहास को जनता के बीच पुनर्जीवित करना होगा। जब तक देश में राष्ट्रवाद नहीं होगा तो देश एक संगठित शक्ति के रूप में कार्य नहीं कर पायेगा। वर्तमान में अनेक नेताओं और भारतीय लोगों में राष्ट्रवाद का अभाव निरन्तर देखा जा रहा है, जिसका लाभ शत्रु देश उठाते रहते हैं।

भारत की वर्तमान सरकार विगत अनेक वर्षों से चीन का दृढता से सामना कर उसको अपनी सम्प्रभुता व अखण्डता का सन्देश दे रही है। यह चीन सहन नहीं कर पा रहा है। भारत में जन्म लेते राष्ट्रवाद को चीन देखना नहीं चाहता है। इसीलिए वह अपने चाटुकार नेताओं के माध्यम से और अपनी सैन्य शक्ति के बल पर भारत को झुकाना चाहता है। वह भारत में ऐसी कमजोर सरकारों का गठन चाहता है, जो उसके **<u>इशारों</u>** पर नृत्य करती हो। वह अपने इस स्वप्न में जब अपने को असफल देखता है तो क्रोधाग्नि से प्रबलरूप से पीडित हो जाता है। जब पीडा असह्य हो जाती है तो सीमाओं पर अतिक्रमण करना, निष्कारण बल दिखाकर डराना इत्यादि कार्य करता है। वह जानता है कि भारत की सरकार मेरे विरुद्ध कुछ नहीं करेगी और यदि करेगी तो मैं अपने चाटुकार नेताओं को हल्ला मचाने के लिए आगे कर दूंगा, जिसका उदाहरण आप प्रतिदिन देख रहे हैं।

आज हमें अभिमान है अपनी सैन्य शक्ति पर और उसके साहस पर। जो सीमा पर चीन की आंख में आंख डालकर उसका मुँहतोड उत्तर दे रही है। आज भारत में जीवित होते राष्ट्रवाद के कारण सेना प्रोत्साहित हो रही है। जिसके कारण सेना का मनोबल बहुत बढ़ा है। वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में चीन और पाकिस्तान एक साथ भारत को सीमाओं पर घेरना चाहते हैं। चीन की कूटनीति है कि विश्व में कोरोना फैलाने का जो महान् कार्य उसने किया है, इसके कारण सारा विश्व तिरस्कार कर रहा है। इस तिरस्कार के कारण चीन का व्यापार और वहाँ पर कार्य कर रहीं कम्पनियां चीन को छोड़ रहीं हैं। वे कम्पनियां भारत आना चाहती हैं। चीन भारत में युद्ध जैसी स्थिति उत्पन्न कर भारत में आने वाली कम्पनियों को रोकना चाहता है। वह भारत की सीमाओं पर अतिक्रमण कर कोरोना से विश्व का ध्यान हटाना चाहता है। वह भारत के राष्ट्रवाद को नीचा दिखाना चाहता है।

भारत चीन को वियतनाम और हांगकांग का मुद्दा उठाकर चीन द्वारा उईगर मुसलमानों पर किये जा रहे अत्याचारों का मुद्दा उठाकर, चीन से निर्यातित व्यापार को कमकर, भारत में चीनी कम्पनियों को हतोत्साहित कर उसकी बहुत क्षति करने पर कार्य कर रहा है, जिससे चीन को दृढ संकेत भारत की ओर से मिल रहे हैं। हम भारतीयों का भी कर्त्तव्य है कि ऐसी परिस्थिति में यथासम्भव चीन निर्मित वस्तुओं का

बहिष्कार करें। हमारा छोटा-सा प्रयास अपने देश को सबल बनाने और चीन को निर्बल बनाने का कार्य करेगा। भारत पाकिस्तान को कूटनीतिकरूप से घेरने के लिए गिलगित व ब्लूचिस्तान में होने वाले अत्याचार के साथ-साथ पी. ओ.के और आतंकवाद का मुद्दा प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रिय मंच पर उठाकर पाकिस्तान का सर्वनाश करने में सफल हो सकता है, जिससे दोनों देशों पर कुटनीतिक दबाव होगा।

भारत १९४७ में स्वतन्त्र हुआ था। अंग्रेजों की सरकार ने भारत को आन्तरिकरूप से कमजोर कर दिया था। भारत स्वतन्त्रता के पश्चात् हुए हिंसात्मक विभाजन का दंश सहन कर रहा था। चीन ने भारत की इस कमजोरी का लाभ उठाया। १९६२ में भारत की एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक कमजोरी भी थी। तत्कालीन नेहरु सरकार चीन पर आवश्यकता से अधिक विश्वास कर बैठी थी, जिसके कारण भारत को पराजय का मुख देखना पडा।

प्रिय सुहृत्पाठकवृन्द! सन् १९६२ से लेकर वर्त्तमान तक अनेकों प्रयासों के पश्चात् भी चीन भारत को क्रमिकरूप से धोखा देता आ रहा है। चीन निरन्तर पाकिस्तान को भारत के विरुद्ध सामरिकरूप से प्रयोग कर रहा हैं। वह पाकिस्तान का छद्म मित्र बन भारत को अवनति की ओर से जाना चाहता है। भारत में बढ़ते आतंकवाद और पाकिस्तानी सेना द्वारा किये जाने वाले सीजफायर के उल्लंघन का कारण भी चीन ही है। चीन स्वयं सामने न आकर पाकिस्तान के बहाने से भारत को परेशान करता रहा है। वह जानता है कि यदि भारत का सुस्थिर विकास हुआ तो वह चीन को पीछे छोड़ सकता है। भारत की युवाशक्ति की कर्मण्यता भारत को विश्वपटल पर निरन्तर उन्नति की ओर ले जाती रही है। ऐसी परिस्थिति में सामने मीठा बनकर पीछे से प्रहार करने की रणनीति पर चीन कार्य करता आया है। आज भी वह निरन्तर यही कर रहा है।

प्रिय पाठकवृन्द! वर्तमान की स्थितियों के अनुसार देश जहाँ कोरोना से पीडित है, वहीं देश की सीमाओं पर शत्रु देशों से भी पीडित है। ऐसी विकट परिस्थिति में आप सुरक्षित रहते हुए अपने सैनिकों का, चिकित्सकों का और उन सबका जो निरन्तर देश को आपदाओं से सुरक्षित कर रहे हैं, उनका मनोबल बढ़ाने का कार्य करते रहें हैं। आप अपने अन्दर और समाज में राष्ट्रवाद का उद्घोष निरन्तर करते रहें हैं, जिससे राष्ट्रहित सर्वोपरि हो सके। **'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः'** अर्थात् यह भारतभूमि हमारी माता है और हम इसके पुत्र है। इस वेद के आदेश को मानते हुए हम अपनी मातृभूमि की रक्षार्थ अपना सर्वस्व बलिदान करने वाले बनें। आज आपको शरीर के साथ-साथ मन से भी दृढ़ होना है और अपने राष्ट्र को भी दृढ़ करना है। हमारी दृढता, आन्तरिक संगठनशक्ति से चीन जैसे शत्रुराष्ट्रों का मनोबल निश्चित ही टुटेगा।

- डॉ. रवीन्द्र कुमार
मो.-९९९७३०४८८६

ऋषि-मीमांसा (ऋषित्व का दर्शन)

❑ आचार्य उदयन मीमांसक...✍

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परञ्च यत् ।[१]
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥

(मैत्रायण्युपनिषद्-६.२२, त्रिपुरातापिन्युपनिषद्-४.१७, विष्णुपुराण-६.४.६४)

ब्रह्म (ईश्वर) से साक्षात् उपदिष्ट होने से ज्ञान के आधारभूत शब्दमय वेदों के लिए भी ब्रह्मशब्द का प्रयोग होता है ।[२] यद्यपि वेद साधन है और ब्रह्म साध्य है, पुनरपि शास्त्रों में कहीं-कहीं गौणरूप से साध्य-साधनों में अभेदत्व माना गया है।[३] इसीलिए उद्धृत श्लोक में वेद और ईश्वर दोनों के लिए ब्रह्मशब्द का प्रयोग किया गया है, पर विशेषणों से उनमें भेद भी किया गया है कि- शब्दब्रह्म (वेद) और परब्रह्म (परमेश्वर) दोनों ही जानने के योग्य हैं। जो शब्दब्रह्म (वेद) को समझने में निष्णात (कुशल) है, वही परब्रह्म के स्वरूप को समझने में एवं उसे प्राप्त करने में समर्थ होता है । परब्रह्म की प्राप्ति में प्रमुख साधन वेद है और उस वेद को समझने के लिए ऋषि, छन्द, देवता और स्वर को समझना[४] प्राथमिकरूप से अनिवार्य है।[५] इनमें भी प्रमुखरूप से एवं सर्वप्रथम जानने योग्य ऋषितत्त्व ही है-

ऋषिं तु प्रथमं ब्रूयाच्छन्दस्तु तदनन्तरम् ।
देवतामथ मन्त्राणां कर्मस्वेवमिति श्रुतिः ॥

(बृहद्देवता - ८.१३८)

इसीलिए इस लेख में केवल ऋषि विषय की ही मीमांसा की जा रही है ।

ऋषि शब्द का अर्थ कोषकारों के अनुसार वेद, वशिष्ठादि, दीधिति (प्रकाश, आभा, किरण) आदि हैं। तद्यथा- **ऋषिर्वेदे वशिष्ठादौ दीधितौ च पुमानयम्** (मेदिनी० ३१.६)। **ऋषिस्तु वेदे भृग्वादौ ज्ञानवृद्धे दिगम्बरे** (वैजयन्ती० ६.१.९)।

ऋषिशब्द चेतनायुक्त वशिष्ठादि मनुष्यविशेषों के लिए तो सर्वप्रसिद्ध है । शब्दात्मक (अचेतन) वेद के लिए 'ऋषि' शब्द कैसे प्रयुक्त हुआ? यह विचारते हैं- यास्क ऋषि के अनुसार द्रष्टा को ऋषि कहते हैं - **''ऋषिर्दर्शनात्''** (निरु० २.११)।[६] सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय रूपी सभी अवस्थाओं में समानरूप से सब कुछ देखने व जानने वाला होने से परमात्मा 'ऋषि' कहलाता है।[७] परमात्मा के लिए वेद (स्वयं ईश्वर) ने भी 'ऋषि' शब्द का प्रयोग किया है - **''य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वद् ऋषिर्होता न्यसीदत् पिता नः''** (ऋ० १०.८१.१, यजु० १७.१७, तै०सं० ४.६.२१, मै०सं० २.१०.२, काठ०सं० १८.१)। इसलिए परमात्मा अद्वितीय[८] तथा आदि ऋषि है । यही ऋषि शब्द का मुख्य अर्थ है ।[९] ऋषि (परमात्मा) के द्वारा साक्षात् उपदिष्ट होने से और परमात्मा का दर्शन कराने से (दर्शनात्) वेद भी ऋषि पद का अर्थ है ।[१०] यह अर्थ भी हमें वेदों में प्राप्त होता है- **''ऋषिचोदनः''** (ऋ० ८.५१.३)= **ऋषीणां मन्त्राणां चोदनः प्रेरकः** (द्र० सायणभाष्यम्) । इसी अर्थ में यही शब्द महाभारत में भी मिलता है- **''ऋषिचोदितम्''** (शान्ति० ११.१९)= **ऋषिणा मन्त्रेण बोधितम्** (नीलकण्ठभाष्यम्)।[११] पाणिनि आदि व्याकरण के आचार्यों ने भी वेद के लिए ऋषि शब्द का प्रयोग किया है- **''कर्तरि चर्षिदेवतयोः''** (अष्टा० ३.२.१८६)- **ऋषिः वेदमन्त्रः** (सिद्धान्त कौमुदी - ३१६७), **सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे** (अष्टा० १.१.१६), **अप्लुतवदुपस्थिते** (अष्टा० ६.१.१२९)- उपस्थितोऽनार्षः इतिशब्दः । ऋषिः=वेदः, आर्षः=वैदिकः, अनार्षः=अवैदिकः । वेद के लिए 'ऋषि' शब्द का प्रयोग मुख्यार्थ के सम्बन्धी होने से गौणार्थ में प्रयुक्त हुआ है ।[१२]

देवताओं के लिए भी ऋषि शब्द का प्रयोग हुआ है । यथा- **अग्निर्ऋषिः** (ऋ० ९.६६.२०, यजु० २६.६, तै० आरण्यक - २.५.२)। **इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिरिन्द्रः** (ऋ० ८.१६.७)। **सोमो मीढ्वान् पवते गातुवित्तम ऋषिर्विप्रो विचक्षणः** (ऋ० ९.१०७.७) इत्यादि । इन मन्त्रों में अग्नि आदि शब्दों से परमात्मा का ग्रहण करने पर[१३] इन में भी ऋषिशब्द परमात्मा का ही वाचक होगा, उससे भिन्न अन्य देवताओं का नहीं ।

ईश्वर के अनुग्रह से एवं वेदज्ञान की सहायता से जो व्यक्ति कठोर तप करके अलौकिक और ईश्वर, आत्मा आदि अतीन्द्रियविषयों को देखने अर्थात् जानने में समर्थ होता है, वह भी (दर्शनाद्) 'ऋषि' कहलाता है[१४], पर यह भी गौण प्रयोग ही है। क्योंकि मनुष्य की अधिकतम देखने (जानने) की शक्ति भी सीमित ही होती है, वह भी अपेक्षित व अभीष्ट कुछ अतीन्द्रिय विषयों को ही देखता है, न कि सब कुछ। इसलिए व्यापक अर्थ वाले शब्द का किसी सीमित अर्थ में प्रयुक्त होना ही गौणप्रयोग या भाक्तप्रयोग कहलाता है। कालान्तर में यही गौणप्रयोग प्रसिद्ध हो गया है और अतिव्याप्त भी होने लगा। इस अतिव्याप्ति का दिग्दर्शन हम आगे करायेंगे। मुख्यार्थ तो अदृश्य (ओझल) ही हो गया है।

तर्क अर्थात् ऊह को भी ऋषि माना गया है- **"पुरस्ताद् मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवान् अब्रुवन् - को न ऋषिर्भविष्यतीति? तेभ्य एतं तर्कम् ऋषिं प्रायच्छन् मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूढम्"** (निरु० १३.१२)। ऋषियों की परम्परा के समाप्त होने पर मनुष्यों ने देवताओं से पूछा कि ऐसी स्थिति में हमें वेदार्थ का बोध कराने वाले ऋषि कौन होंगे? तब देवताओं ने मनुष्यों को तर्क (ऊह, विवेचना, मीमांसा) रूपी ऋषि को प्रदान किया, यही ऋषि मन्त्रार्थविषयक चिन्तन एवं ऊहापोह (तर्क-वितर्क) कर वेदार्थ बतलायेगा। साथ में यह भी कहा गया है कि तर्क श्रुति के अनुकूल होना चाहिए, न कि श्रुतिविरुद्ध शुष्कतर्क- **"मन्त्रार्थचिन्ताऽभ्यूहोऽपि श्रुतितोऽपि तर्कतः, न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः, प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्याः"** (निरु० १३.१२)। इस तर्क के स्वरूप व लक्षण के विषय में न्यायदर्शनकार कहते हैं- **"अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः"** (न्याय० १.१.४०) अज्ञात विषय के तत्त्व (यथार्थता) को जानने के लिए प्रामाणिक एवं सहेतुक ऊह करना ही तर्क कहलाता है। ऐसे वेद के अविरुद्ध तर्क को भर्तृहरि ने भी चक्षु (दर्शक, ऋषि) कहा है- **"वेदशास्त्राविरोधी च तर्कश्चक्षुरपश्यताम्"** (वाक्यपदीय-१.१३५)।

यह तर्करूपी ऋषि अत्यन्त गौण अर्थ में है। यहाँ कोई अलौकिक या अतीन्द्रियविषय के प्रत्यक्षीकरण का कोई उल्लेख नहीं है। यह तो ऋषि-परम्परा के नष्ट होने पर वेदार्थ के बोध के लिए सुझाया गया एक उपायमात्र है। ऋषियों के अभाव में कोई भी वेदार्थ का त्याग न करें, वेदार्थ तक पहुंचने का पुरुषार्थ अवश्य करें, यही यास्काचार्य का अभिप्राय है। इसी प्रसंग में यास्क ने यह भी कहा है कि- **"न ह्येषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषेरतपसो वा। पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्यो भवति"** (निरु० १३.१२)- जो प्रकरण के अनुकूल वेदशास्त्राविरुद्ध तर्क (विचार) कर नहीं सकता, शास्त्रीयाध्ययनरूपी तप जिसने नहीं किया, उसे वेदार्थ का ज्ञान नहीं हो सकता। हाँ, जो प्रकरणानुकूल अर्थ का जानने वाला (तर्क ऋषि) है और जो बहुश्रुत अर्थात् अनेकों शास्त्रों में जिसने तप किया हो, ऐसा व्यक्ति वेदार्थ को जानने में प्रशस्त (सफल) होता है। ऐसे विद्वान् को बौधायन-गृह्यसूत्रकार ने भी 'ऋषि' उपाधि से विभूषित किया है- **"चतुर्वेदाद् ऋषिः (इत्यभिधीयते)"** (बौ०गृ० १.७.७)[१५]। जो चारों वेदों को कण्ठस्थ कर अर्थ करने में कुशल व प्रशस्त हो वह विद्वान् (भी) ऋषि कहलाता है।[१६] महर्षि दयानन्द ने वेदमन्त्रों में आगत ऋषिशब्द का प्रायः यही अर्थ किया है। यथा- **ऋषिम्** = वेदपारगाध्यापकम् (ऋ० १.११७.३), **ऋषिभिः**= मन्त्रार्थद्रष्टृभिः अध्यापकैस्तर्कैः (ऋ० १.१.२), ऋषिः=मन्त्रार्थद्रष्टा विद्वान् विद्याप्रकाशकः (ऋ० १.६६.२), अध्यापकोऽध्येता वा (ऋ० १.१०६.६), **ऋषयः**=वेदार्थविदो विद्वांसः (ऋ० १.१६२.७) इत्यादि। अपि च द्रष्टव्य- यजुर्वेदभाष्य ३४.४९ आदि।

अभी तक हमने ऋषि के चार अर्थ देखें हैं- १. सर्वद्रष्टा परमात्मा, २. परमात्मा का दर्शन कराने वाला वेद, ३. अतीन्द्रिय विषय का द्रष्टा और ४. वेदार्थ का द्रष्टा विद्वान्। ये चारों अर्थ क्रमशः मुख्य, गौण, गौणतर और गौणतम हैं। इसे यहाँ विशेषतया ध्यान रखना चाहिए। अब हमारा प्रमुखतया विवेचनीय विषय यह है कि वेदमन्त्रों के ऊपर उल्लिखित ऋषि, देवता, छन्द और स्वरों में से ऋषि का स्वरूप क्या है? ऊपर के चारों अर्थों में से किस अर्थ का ग्रहण करना चाहिए? इसके समाधान में सामान्यतया कहा जाता है कि- मन्त्रार्थ का दर्शन सर्वप्रथम जिस-जिस ऋषि को हुआ है और उस दृष्ट अर्थ को उन्होंने अन्यों को पढ़ाया है, उस-उस ऋषि का नाम स्मरण के हेतु उनके द्वारा दृष्ट मन्त्रों के साथ लिखा जाता है। इस मत में

अनेकों बिन्दु विचारणीय हैं । यथा -

१. यदि मन्त्रों के साथ उल्लिखित ऋषियों ने ही सर्वप्रथम अर्थ का दर्शन किया है, उनसे पूर्व किसीने भी नहीं किया, तो अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा ऋषियों को साक्षात् परमात्मा से जो ऋग्वेदादि प्राप्त हुए हैं,[17] क्या उन्हें अर्थ रहित मन्त्र ही प्राप्त हुए थे? यदि ऐसा है तो अर्थरहित मन्त्रों में वेदत्व (ज्ञानत्व) कैसे सम्भव है? जिस उद्देश्य से परमात्मा ने वेदों का ज्ञान (?) दिया है, वह विना अर्थ के कैसे सिद्ध होगा? शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य होता है, विना अर्थ के तो शब्दत्व की ही हानि होगी।

२. यदि कोई कहें कि अग्नि आदि ऋषियों को अर्थ के साथ मन्त्र प्राप्त हुए थे, परन्तु उन्होंने किसी को पढ़ाया नहीं । यह तो सर्वथा ही असत्य है, क्योंकि यदि वे अन्यों को नहीं पढ़ाते, तो वेदों की परम्परा आगे कैसे चलती? यह भी मान्यता है कि उन्हीं अग्नि आदि चार ऋषियों से चारों वेदों का ज्ञान ब्रह्मा को प्राप्त हुआ था और ब्रह्मा ने अन्यों को पढ़ाया है, तो क्या ब्रह्मा को अर्थ रहित ही चार वेद पढ़ाये गये हैं? और ब्रह्मा ने अन्यों को क्या अर्थ हीन मन्त्रमात्र ही पढ़ाया था ?

३. सभी प्रामाणिक आचार्य मानते हैं कि सर्गारम्भ में ऋषियों को जो वेद प्राप्त हुए हैं, वे 'सुप्तप्रबुद्धन्याय'[18] से अर्थ के साथ प्राप्त हुए हैं । पुनः यह कैसे उचित या सत्य हो सकता है कि मधुच्छन्दादि ऋषियों ने ही सर्वप्रथम मन्त्रार्थ का दर्शन किया है, उनसे पूर्व अन्य किसीने भी नहीं किया?

४. स्मरण हेतु केवल मधुच्छन्दा आदि नाम ही क्यों लिखे जा रहें हैं? अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा और ब्रह्मा का स्मरण अनिवार्यतया क्यों नहीं किया जाता है? इनका तो उल्लेख कहीं कहीं ग्रन्थों में ही हुआ है । क्या ये वेदनामों के साथ स्मरण के योग्य नहीं हैं ? जब कि ये ऋषि वेदपरम्परा के मूल पुरुष हैं ।

५. स्मरण हेतु मधुच्छन्दादि नामों का मन्त्रों के साथ संयोजन क्या वे ऋषि स्वयं किये हैं या अन्यों ने किया है? वे स्वयं ही अपने-अपने नामों को देवतादि के साथ संयुक्त किये हैं, ऐसा मानना उचित नहीं है । क्योंकि इस प्रकार के यश की कामनापरक प्रवृत्ति ऋषियों में नहीं देखी जाती है, वह भी वेदार्थदर्शन के काल में तो सर्वथा असम्भव है । यदि अन्यों के द्वारा संग्रह किया गया है, ऐसा माना जाय, तो और अधिक आशंकाएँ उत्पन्न होती हैं -

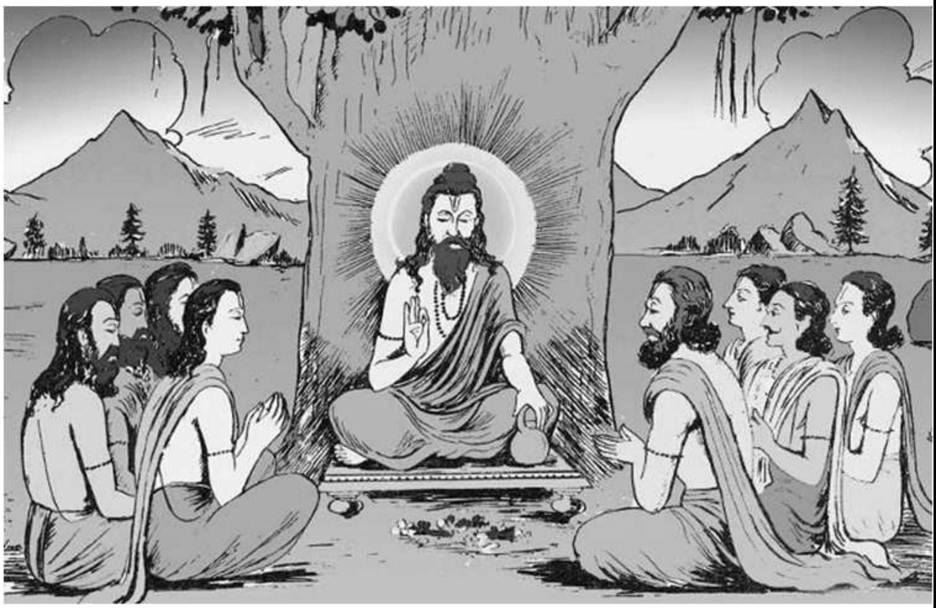

वे मधुच्छन्दादि मन्त्रद्रष्टा ऋषि क्या एक ही स्थान के निवासी और समकालीन थे? जिससे संग्रहकार्य सरलतया सम्भव हो सका । या एकस्थानीय होते हुए भिन्न-भिन्न काल के थे? या समकालीन होते हुए विभिन्न स्थानों के निवासी थे? सर्वथा एकान्त वनों में विद्यमान मन्त्रद्रष्टाओं के नामों का संग्रह किसने किया? कैसे किया? इसका कहीं कोई उल्लेख नहीं है । इतना महत्वपूर्ण विषय अवर्णित कैसे हो सकता है? वैदिक काल में नामसंग्रह का प्रयोजन व उद्देश्य भला क्या हो सकता है? संग्रहकर्ता मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के समकालीन था या अनन्तर कालीन? संग्रहकर्ता एक ही था या अनेक? संग्रहकार्य पूर्ण हुआ था या नहीं? संग्रह-कर्ता यदि पश्चाद्भावी है तो संग्रहकार्य को घूम-घूम

कर प्रसिद्धि के आधार पर ही सम्पन्न किया होगा ।

मधुच्छन्दादि वैदिक ऋषियों को व्यक्तिविशेषों (मन्त्रद्रष्टाओं) के नाम हैं, ऐसा मानने पर विभिन्न प्रकार के अनेकानेक प्रश्न भी उपस्थित होते हैं । यथा- कुछ मन्त्रों का ऋषि सर्प, कपिञ्जल, कपोत, सुपर्ण, गोधा, मत्स्य, नदी, पर्वत, बिन्दु आदि हैं । ये ऋषियों के नाम कैसे हो सकते हैं ? या सर्पादि मन्त्रद्रष्टा ऋषि कैसे हो सकते हैं? संवाद सूक्तों में ऋषि का मन्त्रप्रतिपाद्य देवता के साथ संवाद देखा जाता है, यह कैसे सम्भव है? इत्यादि प्रश्न विद्वत्समाज में बहुत चर्चित हैं । जिनका समाधान सम्भव नहीं है । लेखक की दृष्टि में यह सब सर्वथा उपेक्षणीय है । अब हम यथार्थ ऋषितत्त्व की ओर प्रस्थान करते हैं -

निरुक्तकार यास्कमुनि लिखते हैं- **''यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्देवतः स मन्त्रो भवति''** (निरु० ७.१)। इस वचन के आधार पर यह अवधारणा बना ली गयी है कि जिस कामना से ऋषि (व्यक्तिविशेष) जिस देवता में प्रतिपाद्यत्व को चाहता हुआ स्तुति करता है, उसे ही मन्त्र का देवता कहा जाता है । यहाँ ऋषि से व्यक्तिविशेष का ही ग्रहण किया जाता है, जिससे अनेकों असमाधेय संशय उत्पन्न होते हैं। पर यह गौण अर्थ है, यह पूर्व में कह चुके हैं । मुख्यार्थ के असम्भव होने पर ही गौण अर्थ का ग्रहण करना शास्त्रसम्मत है[१९], पर मुख्यार्थ के सम्भव होने पर भी गौणार्थ का ग्रहण करना अन्याय्य, अनुचित ही माना जाता है ।[२०] इसीलिए महर्षि दयानन्द मुख्यार्थ का ही ग्रहण करते हुए निरुक्तवचन की व्याख्या इसप्रकार करते हैं- 'ऋषि=सर्वदृक् ईश्वर जिसकी कामना करता हुआ = इस अर्थ का (मनुष्यों को) उपदेश करूँ, वह जिस देवता में अर्थ के स्वामित्व के उपदेश की इच्छा करता हुआ अर्थात् इस अर्थ का यह स्वामी होवे, ऐसा चाहता हुआ स्तुति करता है=उस अर्थ (पदार्थ) के गुणों का कथन करता है, वह मन्त्र उस देवता वाला होता है' (द्र०ऋ०भा०भू०, वेदविषय, संस्कृतभाग)। महर्षि की इस व्याख्या से स्पष्ट है कि ऋषि से यहाँ सर्वद्रष्टा ईश्वर का ही ग्रहण करना चाहिए। महर्षि ने अन्यत्र भी इसी अर्थ का संकेत भी किया है - **''ऋषिद्विषे=वेद-वेदविद् ईश्वर-विरोधिने दुष्टाय मनुष्याय''** (ऋ० १.३९.१०)। **ऋषिः=ज्ञाता (परमेश्वरः)** (यजु० १७.१७), **सर्वज्ञः (ईश्वरः)** (आर्याभि० २.३०)।

इस मुख्यार्थ के ऋषित्व को समझने के लिए एक लौकिक उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ- कोई व्यक्ति शाम के समय यह कहे कि 'पांच बज गया'। इस वचन का भिन्न-भिन्न प्रसंगों में भिन्न-भिन्न अर्थ सम्भव हैं। जबकि सभी प्रसंगों में वचन (शब्दावली) समान है और शाब्दिक अर्थ भी समान है। अभिप्राय (प्रतिपाद्य) भिन्न-भिन्न है। यह अभिप्राय का भेद वक्ता की इच्छा (कामना) के भेद से हुआ है। इसलिए वक्ता ने किस प्रसंग में, किस उद्देश्य (प्रतिपाद्य) से, किस भाव की अभिव्यक्ति के लिए उस वचन का प्रयोग किया है? यह जानना प्राथमिकरूप से अत्यावश्यक है। अन्यथा वक्ता का अभीष्ट अर्थ गृहीत ही नहीं होगा। अभीष्ट अर्थ के ग्रहण के लिए वक्ता की इच्छा (कामना) को पहले जानना अनिवार्य है। उसके बाद तदनुकूल प्रतिपाद्य जानकर वचन का अर्थ किया जायेगा। ठीक इसीप्रकार ईश्वर के वचनों (मन्त्रों) के विभिन्न अर्थ सम्भव हैं, पर ईश्वर की इच्छा (कामना) किस अर्थ के प्रतिपादन में है, यह जानना प्राथमिकतया, प्रधानतया अनिवार्य है। बस, ईश्वर की उसी इच्छा को (ऋषि) कहा गया है। वेदार्थ करने में सबसे पहले जानने योग्य एवं महत्त्वपूर्ण विषय 'ऋषितत्त्व' ही है।[२१] इसे जानने के पश्चात् तदनुकूल प्रतिपाद्य (देवता) का बोध होता है, उसके बाद वचन (मन्त्र) का अर्थ छन्द तथा स्वर आदि के आधार पर किया जायेगा। इसीलिए प्राचीन आचार्यों ने ऋषि आदियों को जाने विना वेदों को पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञकरना अर्थात् मन्त्रों का विनियोग करना पापकर्म माना है। यदि मधुच्छन्दादि व्यक्तिविशेषों के नाम होते तो वेदार्थ के लिए ऋषिज्ञान अनिवार्य नहीं होता, न ही उसके विना पढ़ना, पढ़ाना आदि पापजनक होता। नामों या व्यक्तियों को जाने विना भी वेदार्थ अक्षुण्ण रहता। पर यथार्थता उससे सर्वथा ही भिन्न है। मन्त्र के ऋषि (ईश्वरेच्छा) को जाने विना मन्त्रार्थ असम्भव है।[२२] ईश्वरेच्छा को जानने के लिए तप करना होगा। इसके लिए वेदार्थ के जिज्ञासुओं से अनुरोध किया जाता है कि वे लेखक के लेख ''वेदार्थ और भाषाविज्ञान के शाश्वत नियम'' को एक बार अवश्य पढ़ें।[२३] वेदमन्त्रों के ऋषि ईश्वर का अभिप्राय

(कामना) विशेष है, ऐसा मानने पर व्यक्तिविशेषपक्ष में सम्भावित सभी आक्षेप व आशंकाएँ निर्मूल हो जातीं हैं। इसलिए वे सर्वथा उपेक्षणीय तथा त्याज्य हैं।

सूक्त व मन्त्रों के 'ऋषि' के अर्थग्रहण में मुख्यार्थ (सर्वद्रष्टा परमेश्वर की कामना विशेष) का ग्रहण करना चाहिए और मन्त्रों में आगत 'ऋषि' शब्द के अर्थग्रहण में वेद, मन्त्रद्रष्टा, वेदविद् विद्वान् आदि का ग्रहण करना चाहिए । सर्वत्र 'ऋषि' का अर्थ 'मन्त्रार्थद्रष्टा' ही लें, यह कोई अनिवार्य नियम नहीं है। सर्वत्र उसी एक ही अर्थ के लेने से बहुतसी असमाधेय विसंगतियाँ आतीं हैं। प्रसंगतः ऋषिशब्द के विभिन्न अर्थों का ग्रहण करना चाहिए । महर्षि दयानन्द ने वेदभाष्यादियों में ऐसा ही स्वीकार किया है। मन्त्रों में विश्वामित्र आदि ऋषिनामों के विषय में अधिक चर्चा न करते हुए यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि सभी वैदिक शब्द यौगिक हैं । इस विषय में वेद स्वयं कह रहा है कि- **''एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि''** (ऋ० ४.३.१६) हे (अग्नेः वेधः) प्रगतिशील मेधाविन् ! (तुभ्यम्) तेरे लिए (एता विश्वा) ये सभी (निण्या) नामरहित[२४] अर्थात् रूढ़ शब्दों से रहित (वचांसि) वेदवचन व मन्त्र (नीथानि) कल्याण के मार्ग पर ले चलने वाले हैं । इससे स्पष्ट है कि मन्त्रों में पठित ऋषिनाम यौगिक हैं, रूढ़ (व्यक्तिविशेषों के नाम) नहीं हैं । मन्त्र व सूक्तों के ऋषि ईश्वरेच्छा के द्योतक होने से वे भी यौगिक ही हैं । इसप्रकार **मन्त्रार्थ के बोधक होने से मन्त्र और अर्थ के समान ऋषि, देवता, छन्द एवं स्वर भी नित्य तथा सनातनतत्व हैं ।** इनमें परिवर्तन सम्भव नहीं है । अनुक्रमणीकार आदि आचार्यों ने तो परम्परागत ऋषि, देवता, छन्द और स्वरादियों को लक्षणों के साथ प्रकट किया है । जिससे अन्यों को (परम्पराविच्छिन्नों को) उन विषयों का बोध सरलतया हो सके ।

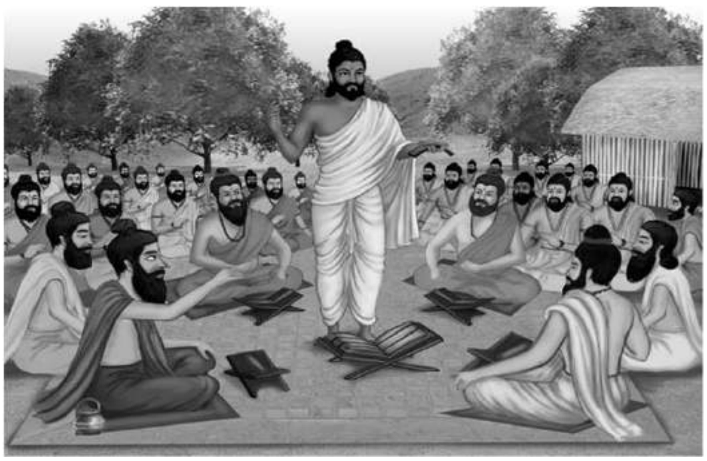

अभिप्रायभेद से एक ही वाक्य का प्रसंगवश विभिन्न अर्थ होते हैं, इसे हमने सोदाहरण देख लिया है । वैसे ही ऋषि (ईश्वर की कामना) के भेद से एक ही देवताक मन्त्र का अर्थ भी भिन्न हो जाता है । इसके लिए एक उदाहरण प्रस्तुत है –

यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन् यक्षद् ऋतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥

(ऋ० १०.१६.११, यजु० १९.६५)

यह मन्त्र ऋग्वेद और वाजसनेय माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद में मिलता है। यजुर्वेद में केवल 'क्रव्यवाहनः' के स्थान पर 'कव्यवाहनः' पाठ मिलता है । शेष पाठ दोनों वेदों में समान है। दोनों ही वेदों में मन्त्र का देवता 'अग्नि' ही है और छन्द भी 'अनुष्टुप्' ही है। पर ऋषि भिन्न-भिन्न है। ऋग्वेद में ऋषि ''यामायनो दमनः'' है और यजुर्वेद में ''शङ्खः'' है। 'यामायनो दमनः' का अर्थ है 'यमगति सम्बन्धी विनाश या विलीनीकरण' । 'शङ्खः' का अर्थ है 'शम कल्याण (सुखविशेष) का खनन खोज करने वाला जिज्ञासु'। अब मन्त्रार्थ को देखते हैं-

ऋग्वेदीय मन्त्र का अर्थ इसप्रकार है –

(यः क्रव्यवाहनः अग्निः) जो शवमांस का वहन [पञ्चतत्त्वों में विलय] करने वाला अग्नि[२५] [ईश्वर] है, (ऋतावृधः) यज्ञ को बढ़ाने वाला वह अग्नि (पितॄन्) पालक सूर्यरश्मि आदियों में (यक्षत्=यजेत्) शव के मांस आदियों को उनमें मिलाता है [संगतीकरण] । वही अग्नि [ईश्वर] (इद् उ) निश्चितरूप से (देवेभ्यः च पितृभ्यः आ=च[२६]) दिव्य पदार्थों के लिए और सूर्यरश्मि आदियों के लिए अर्थात् उनकी शुचिता, पवित्रता बनाये रखने के लिए (हव्यानि) घृत, चन्दन, केसर, औषधि आदि हवनीय पदार्थों का ही विनियोग करें, अन्य प्रदूषण निमित्तक दूषित वस्तुओं[२७] का नहीं, ऐसा परमात्मा (प्र वोचति) प्रकृष्टरूप

से, विशेषरूप से उपदेश दे रहा है ।

यजुर्वेदीय मन्त्र का अर्थ इसप्रकार है –

(यः) जो (कव्यवाहनः)[२८] क्रान्तदर्शी ईश्वर के वेदोपदेशों का वहन, धारण करने वाला (अग्निः) अग्नि के समान विद्याओं में प्रकाश्यमान, गतिमान तेजस्वी विद्यार्थी, जो कि (ऋतावृधः) सत्यज्ञान व वेदविद्या में वृद्ध, प्रखरमेधावी है, वह (पितॄन्) ज्ञान से सबका पालन व रक्षण करने वालों का (यक्षत्) सत्कार करता है [यज्=देवपूजा], उनकी संगति में रहता है [यज्=संगतीकरण], अपने को पूर्णतया समर्पण करता है [यज्=दान]। ऐसा जिज्ञासु छात्र (इत् उ) निश्चितरूप से (देवेभ्यः) ज्ञानदाता आचार्यों को और (पितृभ्यः) पिता आदियों को (हव्यानि) ग्रहण के योग्य ज्ञान-विज्ञानों को (आ=आगत्य) उनके समीप आकर (प्र वोचति) अच्छी प्रकार सुनाता है या आचार्यो से प्राप्त ज्ञान को (आ=समन्तात्) सर्वत्र, सबको (प्र वोचति) विशेषरूप से उपदेश करता है। पहले आचार्य कव्यवाहन था अब शिष्य भी कव्यवाहन बन गया है। यही उसका शङ्खपन (कल्याणकारक ज्ञान की खोज) है।

यहाँ मन्त्र (वाक्य) के शब्द समान होने पर भी ऋषि (ईश्वर की इच्छा, कामना) के भेद से मन्त्रार्थ का भेद हो गया है। यजुर्वेद के मन्त्र में शङ्ख (विद्या के अन्वेषक) का विषय (देवता - अग्नि = प्रगतिशील विद्यार्थी) वर्णित हुआ है तो ऋग्वेद के मन्त्र में अन्त्येष्टि का विषय (अग्नि = परमात्मा के विलयीकरण के नियम) प्रतिपादित है। वैसे तो ऋग्वेद का वह सम्पूर्ण सूक्त (१०.१६) ही अन्त्येष्टि विषयक है। आदि के छह मन्त्र दीक्षित यजमान की मृत्यु होने पर शंसन में विनियुक्त हैं (द्र० आश्वलायनश्रौतसूत्र - ६.१०.१९) या अन्त्येष्टि में भी विनियुक्त किये जाते हैं। प्रकृत मन्त्र (१०.१६.११) स्वयं चातुर्मास्य के अन्तर्गत साकमेधपर्व के महापितृयज्ञ में विनियुक्त है। और इसी सूक्त के मन्त्र १३ एवं १४ तो अन्त्येष्टि के पश्चात् अस्थिचयन में विनियुक्त हैं। इसीलिए सम्पूर्ण सूक्त का ऋषि 'यामायन दमन' है और मन्त्र में उसी ऋषि के अनुकूल 'क्रव्यवाहनः' शब्द का प्रयोग किया गया है। यजुर्वेद में विद्यान्वेषक (शङ्ख) का विषय होने से वहाँ मन्त्र में तदनुकूल 'कव्यवाहनः' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि मन्त्रार्थ में ऋषि भी महत्त्वपूर्ण भूमिका को निभाने वाला उपयोगी तत्त्व है। साथ में पुनरुक्त मन्त्रों के पाठभेद के कारण को अभिव्यक्त करने वाला भी है।

सन्दर्भसूची :-

१. द्वे विद्ये वेदितव्ये तु शब्दब्रह्म परञ्च यत्......(ब्रह्मबिन्दूपनिषद्-१७, तु० विष्णुपु० ६.५.६५)।

२. देवत्तं ब्रह्म गायत (ऋ० ८.३२.२७, अपि च द्रष्टव्य- सायणभाष्य- ऋ० ८.३७.२७;१.३.५,६;१.४७.२); वेदो ब्रह्म (जै०उप० ४.२५.३); ब्रह्म वै मन्त्रः (शत०ब्रा० ७.१.१.५); ब्रह्म वा ऋक् (कौ०ब्रा० ७.१०)।

३. द्र० वेदवाणी (नवम्बर-२०१६) में प्रकाशित लेखक का ''वेदार्थ और भाषाविज्ञान के शाश्वत नियम'' शीर्षक लेख।

४. यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दोदैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण यजति याजयति वाऽध्यापयति वा स्थाणुं वार्च्छति गर्ते वा पात्यते प्रमीयते पापीयान् भवति....तस्मादेतानि मन्त्रे मन्त्रे विद्यात् (आर्षेयब्रा० १.१.६)। अपि च द्र० छान्दोग्योप० १.३.९। ऋषिछन्दोदैवतादिज्ञानं यज्ञादिषु श्रुतम्..... अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च । योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः ।। (बृहद्देवता- ८.१३५-१३६) । मन्त्राणां ब्राह्मणार्षेयच्छन्दोदैवतविद् याजनाध्यापनाभ्यां श्रेयोऽधिगच्छति (ऋक्सर्वानुक्रमणी, परिभाषा० ३)। तत्रार्षदेवतयोरर्थावबोधने उपयुज्यमानत्वात् ते दर्शयिष्येते (स्कन्दस्वामी, ऋग्वेदभाष्य के आरम्भ में)। [मन्त्रेषु त्रैस्वर्यम्] अर्थावबोधनार्थं भविष्यति (मीमांसाशाबरभाष्यम्- ९.२.३१) । स्वराद् भ्रष्टो न वेदफलमश्नुते (याज्ञ०शिक्षा- २४) । आर्षं छन्दश्च दैवत्यं विनियोगस्तथैव च । वेदितव्यं प्रयत्नेन ब्राह्मणेन विशेषतः ।। अविदित्वा तु यः कुर्याद् यजनाध्ययनं जपम् । होममन्यच्च यत् किञ्चित् तस्य चाल्पं फलं भवेत् ।। (बृहद् याज्ञ०स्मृति- १.२७)।

५. जब दैवीभाषा संस्कृत मातृभाषा के रूप में विद्यमान थी, तब वेदार्थावबोध के लिए ऋषि आदियों को प्राथमिकरूप से जाना जाता था । पर आज प्राथमिकरूप से व्याकरण, निरुक्त आदि से सम्पुष्ट संस्कृतभाषा को जानना होगा ।

६. तुलना - एवमुच्चावचैरभिप्रायैर्ऋषीणां मन्त्रदृष्टयो भवन्ति (निरुक्त ७.३)।

७. ऋषति ज्ञानाति ज्ञापयति गच्छति गमयति प्राप्नोति प्रापयतीति ऋषिः परमात्मा । ऋषिम् = अतीन्द्रियस्य कर्मफलस्य द्रष्टारम् (सायण, ऋ० ९.५४.१)। यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद् विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः (तैत्तिरीयारण्यक - १०.१०.३)।

८. नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा (बृ०उप० ३.७.२३)।

९. ''न तस्य प्रतिमास्ति०'' (यजु० ३२.३) का ऋषि 'स्वयम्भु ब्रह्म' है, ''नासदासीन्नो सदासीत्०'' (ऋ० १०.१२९) सूक्त का ऋषि प्रजापति

परमेष्ठी है, इत्यादि ऋषिवाची शब्दों से उक्त मत स्पष्टतया प्रमाणित होता है ।

१०. ऋषिभिः=अतीन्द्रियार्थप्रकाशकैर्मन्त्रैः (सायण, ऋ० १.१८९.८) ।

११. अपि च द्र० ऋषिर्नारायणोऽब्रवीत् (म०भा०शान्ति २१७.२)। ऋषिर्वेदः, **स एव नारायणवाक्यत्वान्नारायणः** (नीलकण्ठभाष्यम्) ।

१२. यः शब्दादेवावगम्यते, स प्रथमोऽर्थो मुख्यः .....यस्तु खलु प्रतीतादर्थात् केनचित् सम्बन्धेन गम्यते, स पश्चाद् भावाज्जघनमिव भवतीति जघन्यः । गुणसम्बन्धाच्च गौण इति (मीमांसाशाबरभाष्यम्- ३.२.१)।

१३. तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ।। (यजु० ३२.१; अपि च द्र० ऋ० १.१६४.४६,१०.११४.५,
अथर्व० १३.४.३-४, निरु० ७.४-५)।

१४. तद्यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत्, त ऋषयोऽभवंस्तदृषीणाम् ऋषित्वम् इति विज्ञायते (निरु० २.११, तु० तै०आ० २.९.१, शत०ब्रा० ६.१.१.१)। ऋषयः=अतीन्द्रियार्थस्य द्रष्टारः (सायणः, ऋ० १०.६२.५)। ऋषिः=यः परोक्षं पश्यति तम् ऋषिमाहुः (वेंकटमाधवः,
ऋ० ९.९६.६, द्र० सायणोऽपि)। ऋषिम्=वेदमन्त्रार्थद्रष्टारं जितेन्द्रियतया शुभगुणानां सदैवोपदेष्टारं सकलविद्याप्रत्यक्षकारिणम् (दयानन्दः, ऋ० १.१०.११)। ऋषिस्तु ....ज्ञानवृद्धे (वैजयन्तीकोष ६.१.९) ।

१५. इससे पूर्व एवं पश्चात् के सूत्र भी बड़े ही महत्त्वपूर्ण और विशेष ध्यातव्य हैं - ''ब्राह्मणेन ब्राह्मण्यामुत्पन्नः प्राग् उपनयनाद् जात इत्यभिधीयते'' ।।१।। [महाभाष्यकार पतञ्जलि के शब्दों में वह 'जातिब्राह्मण' (२.२.६, ५.१.११५) अर्थात् उसकी जाति (वंश) ब्राह्मण
है, वह स्वयं नहीं ।] उपनीतमात्रो व्रतानुचारी वेदानां किञ्चिद् अधीत्य ब्राह्मणः (इत्यभिधीयते)।।२।। एकां शाखामधीत्य श्रोत्रियः ।।३।। अङ्गाध्याय्यनूचानः ।।४।। कल्पाध्यायी ऋषिकल्पः ।।५।। सूत्रप्रवचनाध्यायी भ्रूणः ।।६।। चतुर्वेदाद् ऋषिः ।।७।। अत ऊर्ध्वं देवः (इत्यभिधीयते) ।।८।।

१६. यो वै ज्ञातोऽनूचानः स ऋषिरार्षेयः (शत०ब्रा० ४.३.४.१९), एते वै विप्रा यद् ऋषयः (शत०ब्रा० १.४.२.७) ।

१७. यत्र ऋषयः प्रथमजाः ऋचः साम यजुर्मही (अथर्व० १०.७.१४), यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्० (अथर्व० १०.७.२०)।

१८. प्रातः जागने पर जैसे हमें पूर्व दिन का ज्ञान व स्मरण बना रहता है, वैसे ही प्रलयान्त में अर्थात् सृष्टि के आदि में अग्नि आदि ऋषियों को अर्थ के साथ सभी मन्त्रों का स्मरण बना रहता है । इतने सुदीर्घ प्रलयकाल (४ अरब ३२ करोड़ वर्ष) तक स्मरण बना रहना, वह भी प्रलयावस्था में अर्थात् शरीरादि के अभाव की स्थिति में स्मृत होना तो परमात्मा की कृपा के विना सम्भव ही नहीं है ।

१९. मुख्यार्थता च न्याय्या, न लक्षणार्थता (मीमांसाशाबरभाष्यम्- ३.२.२५)।

२०. न हि मुख्यसम्भवे गौणग्रहणमर्हति (मी०शा०भा ३.३.१६)।

२१. ऋषिं तु प्रथमं ब्रूयात्० (बृ०दे० ८.१३८)। अर्थज्ञान ऋषिज्ञानं भूयिष्ठमुपकारकम् । वक्ष्यन्त ऋषयस्तस्मात्० (वेंकटमाधव, ऋ० १.१.१)।

२२. छान्दोग्योपनिषत्कार ऋषि भी ऋषिज्ञान को वेदार्थ में उपयोगी मानते हैं- ''यस्यामृचि तामृचं यदार्षेयं तमृषिं यां देवताभिष्टोष्यन् स्यात्, तां देवतां उपधावेत्'' (छा०उप० १.३.९) वह साम जिस ऋचा में हो, उस ऋचा को (उपधावेत्) विचारें । ऋग्विचार का प्रकार कैसा हो? उसे आगे कहते हैं कि- वह ऋचा जिस ऋषि का है और जिस देवता का है, उस ऋषि और देवता का विचार करना चाहिए । तभी स्तुति सम्भव है । स्तुति के लिए अर्थज्ञान आवश्यक है । स्पष्ट है कि स्तुति वा मन्त्रार्थ के लिए ऋषि एवं देवता पर विशेष विचार करना चाहिए।

२३. द्रष्टव्य - वेदवाणी (नवम्बर-२०१६), वैदिकपथ (सितम्बर-२०१७), आर्यसमाज टाण्डा, अम्बेडकर नगर (उ०प्र०) की शताब्दोत्तर रजत जयन्ती की स्मारिका (ज्ञानसुधा, २०१६)।

२४. निण्यम्=निर्णामम् (निरु० २.१६), निर्नामधेयम् (सायणः, ऋ० १.३२.१०) ।

२५. शव के मांस आदियों का पंचतत्त्वों में विलीनीकरण पृथिवी (में गढ़ना), जल (में बहाना), वायु (में लटकाना) भी करते हैं । पर इन्हें 'क्रव्यवाहन' नहीं कहा जाता है, केवल 'अग्नि' को ही 'क्रव्यवाहन' कहा जाता है, क्योंकि यही सर्वोत्तम वाहन (विलीनीकरण का साधन) है ।

२६. अस्मिन् (=समुच्चये) एवार्थे... इत्याकारः (निरु. १.४) ।

२७. जैसे आजकल मिट्टी का तैल, पेट्रोल, टायर आदि रब्बड, कपड़े आदि का अन्त्येष्टि में प्रयोग करते हैं ।

२८. कव्यानि = कवेः क्रान्तदर्शिनः प्रभोः प्रशस्तानि उपदेशादीनि कर्माणि वहति वाहयति प्राप्नोति प्रापयति वा सः कव्यवाहनः ।

- आचार्य,
निगमनीडम् - वेदगुरुकुलम्,
पिडिचेड़, गज्वेल, सिद्धिपेट, तेलंगाणा-५०२२७८

यज्ञ में मन्त्रों से आहुति क्यों?

❑ शिवदेव आर्य...

'यज्ञ' शब्द यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु धातु से नङ्प्रत्यय करने से निष्पन्न हुआ है। जिस कर्म में परमेश्वर का पूजन, विद्वानों का सत्कार, संगतिकरण अर्थात् मेल और हवि आदि का दान किया जाता है, उसे यज्ञ कहते हैं। यज्ञ शब्द के कहने से नानाविध अर्थों का ग्रहण किया जाता है किन्तु यहाँ पर यज्ञ से अग्निहोत्र का तात्पर्य है। अग्नेः होत्रम् अग्निहोत्रम्, अग्नि और होत्र इन दोनों शब्दों के योग से अग्निहोत्र शब्द निष्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ होगा कि जिस कर्म में अत्यन्त श्रद्धापूर्वक निर्धारित विधिविधान के अनुसार मन्त्रपाठसहित अग्नि में जो ओषधयुक्त हव्य आहुत करने की क्रिया की जाये, उसे अग्निहोत्र कहते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में अग्निहोत्र के लाभ बताते हुए कहा है कि - **'सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।'** (सत्यार्थप्रकाश, तृतीयसमुल्लास) आगे भी कहा है - **'देखो! जहां होम होता है वहां से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है वैसे दुर्गन्ध का भी। इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म हो के फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है।'** (सत्यार्थप्रकाश, तृतीयसमुल्लास)

इसी प्रकरण में प्रश्न उठाते हुए महर्षि स्वामी दयानन्द जी कहते हैं कि **'जब ऐसा ही है तो केशर, कस्तूरी, सुगन्धित पुष्प और इतर आदि के घर में रखने से सुगन्धित वायु होकर सुखकारक होगा।'** इसके उत्तर में लिखते हैं कि - **'उस सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ वायु को बाहर निकाल कर शुद्ध वायु को प्रवेश करा सके क्योंकि उस में भेदक शक्ति नहीं है और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न और हल्का करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु को प्रवेश करा देता है।'**(सत्यार्थप्रकाश,तृतीयसमुल्लास)

अग्निहोत्र की प्रक्रिया में मन्त्रोच्चारण की क्या आवश्यकता है? यदि अग्निहोत्र में बिना मन्त्रों के आहुति दे दी जाये तो क्या हानि? क्या मन्त्रों के स्थान पर अर्थों को पढ़कर आहुति दी जा सकती है? अंग्रेजी, ऊर्दू आदि के शब्दों को बोलकर क्या आहुति दी जा सकती है? इन समस्त जिज्ञासाओं का समाधान लोग अपने-अपने निज-आग्रह के आधार पर करते हैं किन्तु इन शंकाओं का समाधान हमारे वैदिक वाङ्मय में पहले से ही उपलब्ध है। अतः शास्त्रमर्यादाविहीन निज-आग्रह को छोड़ सत्यान्वेषी होना आवश्यक है।

यज्ञ के प्रबल पोषक महर्षि देव दयानन्द सरस्वती जी ने शास्त्रानुशीलन कर ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदविषयविचार में कहा है कि - **वेदमन्त्रोच्चारणं विहायान्यस्य कस्यचित्पाठस्तत्र क्रियते तदा किं दूषणमस्तीति? अत्रोच्यते - नान्यस्य पाठे कृते सत्ये तत्प्रयोजनं सिध्यति। कुतः? ईश्वरोक्ताभावान्निरतिशयसत्यविरहाच्च......। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदविषयविचारः)**

अर्थात् यज्ञ में वेदमन्त्रों को छोड़ के दूसरे का पाठ करें तो क्या दोष है? अन्य के पाठ में यह प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। ईश्वर के वचन से जो

सत्य प्रयोजन सिद्ध होता है, आप्त पुरुषों के ग्रन्थों का बोध और उनकी शिक्षा से वेदों को यथावत् जानके कहता है, उसका भी वचन सत्य ही होता है। और जो केवल अपनी बुद्धि से कहता है वह ठीक-ठीक नहीं हो सकता। इससे यह निश्चय है कि जहाँ-जहाँ सत्य दीखता और सुनने में आता है, वहाँ वेदों में से ही फैला है, और जो जो मिथ्या है सो सो वेद से नहीं, किन्तु वह जीवों ही की कल्पना से प्रसिद्ध हुआ है। क्योंकि ईश्वरोक्त ग्रन्थ से सत्य प्रयोजन सिद्ध होता है, सो दूसरे से कभी नहीं हो सकता।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने मन्त्रों से ही यज्ञों का विधान किया है, इसका प्रमाण ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में पुनः प्राप्त होता है - **अग्निहोत्रकरणार्थं ताम्रस्य मृत्तिकाया वैकां वेदिं सम्पाद्य, काष्ठस्य रजतसुवर्णयोर्वा चमसमाज्यस्थलीं च संगृह्य, तत्र वेद्यां पलाशाम्रादिसमिधः संस्थाप्याग्निं प्रज्वाल्य, तत्र पूर्वोक्तद्रव्यस्य प्रातः सायंकालयोः प्रातरेव वोक्तमन्त्रैर्नित्यं होमं कुर्य्यात्। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पञ्चमहायज्ञविषयः)** इसमें स्पष्ट शब्दों में कहा है कि **मन्त्रैर्नित्यं होमं कुर्य्यात्** अर्थात् मन्त्रों से नित्य होम को करें। अतः स्पष्ट सिद्ध है कि यज्ञ वेद मन्त्रों से ही होना अनिवार्य है।

लब्धप्रतिष्ठित वैदिक विद्वान् आचार्य रामनाथ वेदालंकार जी ने सामवेद भाष्य में - **उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये। आरे अस्मे च शृण्वते।।** (सामवेद-१३७९) इस मन्त्र का व्याख्यान करते हुए लिखा है कि ब्रह्मयज्ञ वा देवयज्ञ करते हुए मनुष्य मन्त्रोच्चारणपूर्वक परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभावों का ध्यान किया करें और उससे शिक्षा-ग्रहण किया करे।

आर्य संन्यासी स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती जी श्रीमद्भगवद्गीता का भाष्य करते हुए कहते हैं कि-

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते।।
(गीता-१७/१३)

अर्थात् जो शास्त्र-विधि से हीन हो, जिसमें लोक-कल्याणार्थ अन्न तक न दिया गया हो, जो मन्त्रोच्चारणरहित हो, जिसमें कार्य-कर्त्ताओं को दक्षिणा न दी गई हो, जो श्रद्धारहित मन से किया गया हो, उस यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि मन्त्रहीन यज्ञ तामससंज्ञक है, पुनः तामस यज्ञ विश्वकल्याण के लिए क्यों कर हो सकता है?

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी यजुर्वेद भाष्य में कहते हैं -

उपप्रयन्तोऽअध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये।
आरेऽअस्मे च शृण्वते।। (यजुर्वेद-३/११)

अर्थात् **मनुष्यों को वेदमन्त्रों के साथ ईश्वर की स्तुति वा यज्ञ के अनुष्ठान को करके** जो ईश्वर भीतर-बाहर सब जगह व्याप्त होकर सब व्यवहारों को सुनता वा जानता हुआ वर्त्तमान है, इस कारण उससे भय मानकर अधर्म करने की इच्छा भी न करनी चाहिये। जब मनुष्य परमात्मा को जानता है, तब समीपस्थ और जब नहीं जानता तब दूरस्थ है, ऐसा निश्चय जानना चाहिए।

वैदिक विद्वान् हरिशरण सिद्धान्तालंकार जी ने यजुर्वेद के भाष्य करते हुए -

यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा।
एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सर्ववीरस्तं
जुषस्व स्वाहा।। (यजुर्वेद - ८/२२)

प्रस्तुत मन्त्र **एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः** का अर्थ कहते हुए स्पष्ट संकेत किया है कि 'यह यज्ञ आपका ही है। इसके करने वाले आप ही हैं, हम लोग तो निमित्तमात्र हैं। यह यज्ञ ऋग्, यजुः आदि के सूक्तों से उच्चारण युक्त है।'

पद्मभूषण डॉ. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी ने यजुर्वेद के सुबोध भाष्य में -

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः।
यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम
यत् स्वाहा।। (यजुर्वेद - ०८/२५)

प्रस्तुत मन्त्र **यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा** का अर्थ – 'हे यज्ञ के पालक! जिसमें वेद के सूक्त कहे जायें, ऐसे उत्तम यज्ञ कार्य में और वैदिक वचनों के उच्चारण में जो हवन योग्य पदार्थ हैं, वह तुझे हम अर्पण करें' किया है।

शतपथब्राह्मण में **यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा** की व्याख्या – **'यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत्स्वाहेति तद्यदेव यज्ञस्य साधु तदेवास्मिन्नेतद्दधाति।'** (शतपथ ब्राह्मण – ४/४/५/२०) की है।

मन्त्रों के बिना यज्ञ के स्वरूप की तथा उसकी पूर्णता की कल्पना नहीं जा सकती है, क्योंकि त्रयी विद्या रूप मन्त्र, यज्ञ से अभिन्न हैं – **सैषा त्रयी विद्या ऋक्यजूंषिनामानि।** (शतपथ ब्राह्मण–१/१/४/३)

शतपथ ब्राह्मण में आगे कहा गया है – **'वागेवऽर्चश्च सामानि च मन एव यजूंषि'** (शतपथ ब्राह्मण – १/१/४/३)

अर्थात् वाचा, मनसा, कर्मणा यज्ञानुष्ठान के लिए मन्त्रों का विनियोग आवश्यक है।

छान्दोग्य ब्राह्मण ग्रन्थ में वेदमन्त्रों से यज्ञादि कर्म का प्रतिपादन किया गया है –

यो ह वा अविदिताऽर्षेयच्छन्दो दैवताविनियोगेन ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाऽध्यापयति वा स स्थाणुं वर्च्छति गर्त्तं वा पद्यते, प्रमीयते वा पापीयान् भवति यातयामान्यस्यच्छन्दांसि भवन्ति। (छान्दोग्य ब्राह्मण–३/७/५)

इसका भाव यह है कि जो याजक वैदिक छन्द को बिना जाने ही केवल देवता सम्बन्धी विनियोगपूर्वक ब्राह्मण ग्रन्थीय मन्त्र से यजन कराता है, अध्यापन करता है, वह मन्त्र प्रयोक्ता याजक या अध्यापक वृक्ष, लता आदि जड़ योनि को प्राप्त होता है अथवा दु:खालयाऽत्मक नरक को प्राप्त करता है। इसप्रकार यदि कोई करता है तो उसे छान्दोग्य ब्राह्मण में पापियों में अतिनिकृष्ट कहा है।

इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हुए सर्वाऽनुक्रम सूत्र में महर्षि कात्यायन जी कहते हैं कि –

'छन्दांसि गायत्र्यादीनि एतान्यविदित्वा योऽधीतेऽनुब्रूते जपति, जुहोति, यजते याजयते तस्य ब्रह्म निर्वीर्यं यातयामं भवति। अथाऽन्तरा श्वगर्तं वा पद्यते स्थाणुं वर्च्छति प्रमीयते वा पापीयान् भवति।' (सर्वाऽनुक्रम सूत्र)

अर्थात् जो व्यक्ति गायत्री आदि छन्दों के ज्ञान से रहित होकर वेदाध्ययन करता है, वेदमन्त्रों का अभ्यास करता है, यज्ञकर्म में वेदमन्त्रों को उच्चारित करता है, यागक्रिया करता व कराता है तो वह व्यक्ति पाप का भागी होता है। अत: महर्षि कात्यायन के अनुसार सिद्ध है कि यज्ञ मन्त्र के सम्यक् उच्चारण व विधिविधान से होना चाहिए।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में यज्ञ में मन्त्रों के उच्चारण का उद्देश्य दर्शाते हुए कहा है कि इससे मन्त्रों की रक्षा भी होती हैं। इसी तथ्य को महर्षि पतंजलि ने व्याकरणमहाभाष्य के प्रथम पस्पशाह्निक में उल्लेख किया है कि–**'रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्'** अर्थात् वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण का अध्ययन करें।

वेदाध्यय के द्वितीय प्रयोजन में महर्षि पतंजलि ने व्याकरणमहाभाष्य में लिखा है कि – **'ऊहः खल्वपि न सर्वैर्लिङ्गैर्न च सर्वाभिर्विभक्तिभिर्वेदे मन्त्रा निगदिताः। ते चावश्यं यज्ञगतेन यथायथं विपरिणमयितव्याः। तान्नावैयाकरणः शक्नोति यथायथं विपरिणमयितुम्।'** (व्याकरणमहाभाष्य, प्रथम पस्पशाह्निक) उक्त प्रयोजन में भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि वेदमन्त्रों से यज्ञकर्म होना चाहिए।

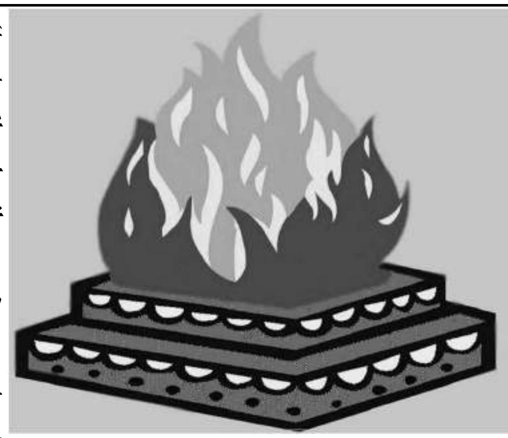

पाणिनीय व्याकरण के **ओमभ्यादाने (अष्टा.८/२/८७)** इस सूत्र में कहा है कि मन्त्रों के उच्चारण से पूर्व जो ओ३म् है, उसको प्लुत हो जाता है।

आगे एक प्रयोजन को महर्षि पतंजलि उद्धृत करते हुए कहते हैं कि – **विभक्तिं कुर्वन्ति-याज्ञिकाः पठन्ति-प्रयाजाः सविभक्तिकाः कार्या इति। न चान्तरेण व्याकरणं प्रयाजाः सविभक्तिकाः शक्याः कर्तुम्। विभक्तिं कुर्वन्ति।** (व्याकरणमहाभाष्य, प्रथम पस्पशाह्निक) यहाँ पर प्रयाजाः शब्द से वेदमन्त्र का ग्रहण किया गया है। अतः स्पष्ट है कि वेद मन्त्रों से यज्ञ होना आवश्यक है।

प्रयाजा शब्दात्मक ऋग्वेद में दो मन्त्र प्राप्त होते हैं –

प्रयाजान्मे अनुयाजाँश्च केवलानूर्जस्वन्तं हविषो दत्त भागम्। घृतं चापां पुरुषं चौषधीनामग्नेश्च दीर्घमायुरस्तु देवाः॥
तव प्रयाजा अनुयाजाश्च केवल ऊर्जस्वन्तो हविषः सन्तु भागाः। तवाग्ने यज्ञो यमस्तु सर्वस्तुभ्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः॥

-ऋग्वेद १०/५१/८-९

प्रणवष्टेः (अष्टाध्यायी-८/२/८९) इस सूत्र के अनुसार यज्ञकर्म में वेदमन्त्रों के टि भाग को **'ओ३म्'** आदेश का विधान कर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है – **अपां रेतांसि जिवन्तो३म्।** इससे स्पष्ट होता है कि पाणिनीय काल में वेदमन्त्रों से यज्ञ करने का विधान था।

'पुरुषविद्यानित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे' (निरुक्त) आचार्य यास्क के अनुसार पुरुष की विद्या अनित्य है और मन्त्र परमात्मा की वाणी होने से नित्यज्ञान है। अतः अग्निहोत्रादि कर्म नित्यज्ञान से युक्त वेदमंत्रों से करने चाहिए। उपरोक्त वैदिक प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि महर्षि देव दयानन्द सरस्वती जी ने आर्षशास्त्र मर्यादा का अनुशीलन कर शास्त्रपरम्परा को अक्षुण्य बनाने का मार्ग प्रशस्त किया है, हमें इसी शास्त्रपरम्परा के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

– गुरुकुल पौन्धा, देहरादून (उत्तराखण्ड)

आप आपने लेख, कहानी, कविता, संस्मरण, ग्रन्थ-समीक्षा व सुझाव हमें ई.मेल – arsh.jyoti@yahoo.in कर सकते हैं।

'शिक्षा' जिस से विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उस को शिक्षा कहते हैं। –महर्षि दयानन्द सरस्वती

मांस खाने न खाने का विचार...

❑ स्वर्गीय पण्डित भीमसेन शर्मा...

अब मांसभक्षण के विषय में विधि वा निषेध का विचार किया जाता है- हिंसा को उत्पन्न करने वाला होने से सभी मांस अभक्ष्य है। हिंसा एक अधर्म है कि जिस हिंसारूप अधर्म और बड़े दु:खफल का वर्णन बहुत वेदादि शास्त्रों में प्राय: किया है। उसका इसमें संग्रह करना पिष्टपेषण के तुल्य जान पड़ता है। मनुस्मृति में भी मांस के निषेधरूप सिद्धान्त में हिंसारूप अधर्म को लेकर ही मांस का निषेध दिखाया है। और अहिंसा को परमधर्म मानना भी शास्त्रों में लिखा ही है। सो इसी धर्मशास्त्र में कहा है कि- 'प्राणियों को मारे बिना कहीं कभी मांस उत्पन्न नहीं हो सकता। तथा प्राणियों का वध करना कल्याणकारी नहीं इससे मांसभक्षण छोड़ देना चाहिये। मांस की उत्पत्ति और प्राणियों के वध-बन्धन को विचारकर सब प्रकार के मांसभक्षण से रहित हो जाना चाहिये।' इस प्रकार मांस खाना बुरा काम होने से सब को त्याज्य है, यह सामान्य कर सिद्धान्तयुक्त विचार है कि मांसभक्षण अच्छा काम नहीं। अब विशेष विचार यह है कि यदि कोई कहे कि चिकित्साशास्त्र में मांसभक्षण के बहुत गुण दिखाये हैं, इस कारण मांसभक्षण कर्त्तव्य ही है। इसका उत्तर यह है कि वैद्यकशास्त्र वालों ने हिंसा का निषेध भी नहीं किया कि मांस खाने में हिंसारूप अधर्म नहीं है। और वे चिकित्सासम्बन्धी ग्रन्थ धर्मशास्त्र नहीं हैं। जैसे कि व्याकरणशास्त्र से चोरी-व्यभिचारादि शब्द भी सिद्ध किये जाते हैं। परन्तु वहां धर्मशास्त्र के तुल्य आज्ञा नहीं दी जाती कि चोरी करना धर्म वा अधर्म है। इसी प्रकार यहां वैद्यकशास्त्र में भी धर्म-अधर्म का विवेचन नहीं है। जैसे चोरी करके प्राप्त हुआ अन्न भी क्षुधा की निवृत्ति करेगा। वैसे ही हिंसारूप अधर्म से उत्पन्न हुआ मांस भी खाने पर किसी की अपेक्षा न्यूनाधिक गुण-अवगुण करे, इससे मांस का अधर्म दोष नाम हिंसारूप दोष से ग्रस्त होना नहीं छूटता अर्थात् दोष अवश्य बना रहता है। अभिप्राय यह है कि जो लोग धर्म-अधर्म का विचार छोड़कर स्वभाव से ही क्षुधा के निवारणार्थ वा अपने शरीर को पुष्ट करने की बुद्धि से सामान्य कर सब जन्तुओं का मांस खाने के लिये प्रवृत्त होते हैं, उनके लिये वैद्यकशास्त्र में एक प्रकार का संकोच दिखाया गया है कि वे लोग भी वैसे जीवों के मांस को न खावें जिससे खाते ही समय अवगुण होकर दु:ख होवे। क्योंकि सर्वथा मांसभक्षण से बचना सम्भव नहीं तो उस गिरती हुई दशा में भी ऐसा उपाय बताना चाहिये जिससे कुछ कम ही दु:ख भोगने पड़ें। अथवा कभी आपत्काल में जब प्राणरक्षा के लिये अन्य कुछ भी भक्ष्य न मिल सके, तब भी वैद्यकशास्त्र में लिखे

अनुसार विचार के साथ गुणकारी और जिससे संसार का कम अनुपकार हो ऐसा मांस खाना चाहिये। प्रयोजन यह है कि पशु आदि की अपेक्षा मनुष्य के प्राण की रक्षा रहना अधिक उपयोगी है। इस कारण मांस से ही प्राण बचते हों तो आपत्काल में ऐसा करे। अथवा पराधीनता से ओषधि के लिये कहीं मांस खाना ही पड़े, अन्यथा उस रोग की निवृत्ति होना यदि दुर्लभ हो तो चिकित्साशास्त्र में कहे विवेकपूर्वक मांसरूप औषध के सेवन से रोग की निवृत्ति करनी चाहिये। रहा हिंसारूप दोष सो तो दोनों पक्ष में होगा, चाहे गुण-अवगुण का विचार किया जाय वा नहीं। तो ऐसी दशा में भी जितना विचार हो सके वही अच्छा है। 'कच्चा मांस खाने वाले वा ग्राम के निवासी पक्षियों को छोड़ देना चाहिये' इत्यादि श्लोकों में जिन-जिन पशु-पक्षी आदि के मांसभक्षण का निषेध किया है, उनसे भिन्न पशु आदि के मांसभक्षण का विधान अर्थापत्ति से प्राप्त होता है। इस विषय में ऐसा जानना चाहिये कि मनुष्यादि के विशेष उपकारी दुग्ध-घृतादि से अनेक प्रकार से मनुष्यों के रक्षक गौ आदि पशुओं का तो कदापि किसी को मांस नहीं खाना चाहिये क्योंकि उनके खाने से बड़ी कृतघ्नता और हानि होती है। इसी कारण इस प्रकरण में गौ आदि उपकारी पशुओं के विषय में विशेष विधिया-निषेध कुछ नहीं किया गया किन्तु उनके आश्रित होने से सर्वथा रक्षा ही कर्त्तव्य है। और जो निषिद्ध पशुपक्षियों के सदृश अन्य पशुपक्षी भक्षण के विधान में आते हैं, वहां भी ये विधिवाक्य नहीं, किन्तु संकोच हैं। जो वह सामान्य कर मांसभक्षण के लिये प्रवृत्त है, उसका सर्वथा निषेध करना किसी प्रकार मांसभक्षण की प्रवृत्ति को कुछ भी नहीं हटाता अर्थात् जो पुरुष सब प्रकार का मांस प्रत्येक समय विशेष कर खाने में प्रवृत्त है, उसको कहा जाय कि तुम मांस खाना सर्वथा छोड़ दो तो एक साथ छूटना असम्भव होगा। किन्तु इस युक्ति से कहा जाय कि अमुक-अमुक देश, काल वा परिस्थिति में तथा अमुक-अमुक गौ आदि जाति का मांस न खाना चाहिये। रहे शेष उनका खाना भी विहित नहीं कि खाना ही चाहिये। क्योंकि विधि वाक्य वहां रहते हैं कि जहां उस काम वा वस्तु का अभाव हो। वह मनुष्य जो स्वयमेव मांस खाने में प्रवृत्त है। उसके लिये किसी जाति आदि का निषेध करना वा किसी जाति आदि का नियम करना कि इन्हीं का खाना उचित है अर्थात् इनसे भिन्न का मांस न खाओ, ये दोनों प्रकार उसको मांस खाने की प्रवृत्ति कम करने के लिये हैं। और कम होने पर धीरे-धीरे उसका छूटना भी सम्भव है। जैसे कोई जितना पाप करता है उससे आधा वा चतुर्थांश किसी युक्ति से करने लगे तो अधिक पापी की अपेक्षा वह प्रशंसित माना जावेगा। जैसे लोक में यह कहावत प्रसिद्ध है कि- 'न करने से थोड़ा करना भी अच्छा है'। वैसे ही अधिक पाप करने की अपेक्षा थोड़ा पाप करना अच्छा है। यह प्रवृत्ति को कम करने का प्रचार यहीं हो, सो नहीं किन्तु अनेक श्रेष्ठ पुस्तकों में दीखता है। जैसे- 'पांच नख वालों में से पांच जीव भक्ष्य हैं' इस महाभाष्य के उद्धरण पर कैयट ने प्रथमाह्निक में ही लिखा है कि- 'मांसाहारी लोग लोभी होकर मांस खाते हैं [जैसे कि चोर लोगों को चोरी करने में स्वभाव पड़ जाता है और वे दूसरों के पदार्थों को प्रतिसमय ताका करते हैं] इससे उनमें मांस खाना स्वयमेव प्राप्त है कि वे सभी जीवों का मांस खाने के लिये अपने स्वभाव से प्रवृत्त होते हैं। पांच नख वाले पांच जीवों में नियम कर देने से अन्य के मांस खाने से बच जाता है, किन्तु यह विधि-आज्ञावाक्य नहीं है कि पांच जीवों का मांस खाना चाहिये। क्योंकि विधिवाक्य वहां कहने पड़ता है जहां उस काम का अभाव हो। जब मांसाहारी स्वयमेव सामान्य कर सब जीवों का मांस खाने में प्रवृत्त हैं, तो उसकी आज्ञा देना व्यर्थ है।' जैसे कोई नित्य-नित्य विशेष मद्यपान करता है, और उसने मद्य के पीने को एक स्वाभाविक आहार बना लिया हो तो वह अन्न के तुल्य उसका त्याग नहीं कर सकता। जो छोड़े तो मरण ही हो जावे। ऐसे ही स्वभाव पड़े हुए मांस का भी त्याग जहां कष्टसाध्य वा असाध्य है। वहां मांस खाने की प्रवृत्ति को कम करने के लिये

जाति आदि के नियम से कहना, संकोचपरक होने से सुखकारी ही है यह आशय है। इस विषय में कोई लोग कहते हैं कि मनुस्मृति में लिखा है- 'यज्ञ के लिये परमेश्वर ने स्वयमेव पशु बनाये हैं। यज्ञ में मारने से सबका कल्याण होता है इससे यज्ञ में किया वध -मारना नहीं अर्थात् निर्दोष है।' इस कारण यज्ञ में पशुओं को होम करने के लिये मारना चाहिये और होम से शेष बचा खाना भी उचित ही है। मनुस्मृति तथा अन्य पुस्तकों में ऐसा भी विधान दीखता है। इस कारण यज्ञ में हिंसा नहीं और वहां मांसभक्षण भी निर्दोष है। इसी कारण- 'वेदोक्तहिंसा हिंसा नहीं होती।' यह किन्हीं का कथन वेदानुकूल और चरितार्थ होता है। मांसभक्षण के प्रतिपादक लोगों का यह पूर्वदर्शित एक बड़ा वा प्रबल पूर्वपक्ष है। इस का उत्तर-यह पूर्वोक्त कथन अयोग्य है। यज्ञ में मांसभक्षण का प्रतिपादन मांसभक्षी लोगों ने ही किया है। उन लोगों का यज्ञ करना छलमात्र है। अर्थात् मांसभक्षण से जो पाप वा दोष लगते हैं, उनको दबाने के लिये आड़ मात्र यज्ञ का आश्रय लेना है। यह मार्ग कदापि अच्छा नहीं है कि यज्ञ में पशु मारे जावें और उनका होम से बचा मांस खाया जावे। महाभारत के शान्तिपर्वान्तर्गत मोक्षधर्म पर्व में लिखा है कि- 'मर्यादा को बिगाड़ने वाले मूर्ख संशयात्मा स्वार्थी दबी-दबी बातें करने वाले नास्तिक लोगों ने यज्ञ में हिंसा कर मांस खाने का विधान किया है।।१।। यज्ञादि सब उत्तम कर्मों में धर्मज्ञ मनु जी ने अहिंसा को ही ध र्म कहा है। स्वार्थी लोग मांस खाने के लोभ से यज्ञ में वा उससे पृथक् पशुओं को मारते हैं।।२।। इस कारण विचारशील मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि वेदप्रमाण का ठीक-ठीक निश्चय करके [कि वेद में हिंसा है वा नहीं ?] सूक्ष्मधर्म का सेवन करना चाहिये। क्योंकि सब प्राणियों के लिये धर्म के सब लक्षणों से अति उत्तम अहिंसा धर्म माना गया है।।३।। यज्ञादि शुभकर्मों में मांसमद्यादि घृणित वस्तुओं का उपयोग धूर्त लोगों ने लगाया है किन्तु वेद में उसका विधान नहीं किया गया।।४।। मान, अज्ञान और लोभ से दुराचारी लोगों ने यज्ञ में मांसमद्यादि खाने, चढ़ाने की कल्पना की है। और श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग सब यज्ञों में एक परमेश्वर की ही उपासना मानते हैं।।५।। किसी ब्राह्मण ने कई लोगों से सुने जाने के अनुसार यज्ञ में हिरण मारने की इच्छा की थी, उसके बड़े भारी संचित तप में विघ्न पड़ गया अर्थात् तप खण्डित हो गया। इससे हिंसाकर्म यज्ञ के योग्य नहीं अर्थात् यज्ञ में हिंसा न होनी चाहिये।।६।। अहिंसा समस्त धर्म और हिंसा करना केवल अधर्म वा अहितकारी है। इस कारण मैं प्रतिज्ञा के साथ कहता हूं कि सत्यवादियों का बड़ा धर्म अहिंसा ही है।।७।। इस पूर्वोक्त कथन से सिद्ध हो गया कि पहले महाभारत बनते समय इस मनुस्मृति में यज्ञ के लिये पशुओं का मारना वा मांस खाने की विधि भी नहीं थी किन्तु पीछे किन्हीं लोगों ने प्रक्षिप्त किया है कि यज्ञ में पशुओं को मारना चाहिये। यह मनु का सिद्धान्त नहीं है किन्तु किसी को कदापि हिंसा नहीं करनी चाहिये। हिंसा करना सर्वथा और सब काल में अधर्म ही है। इसी कारण 'सब कर्मों में धर्मात्मा मनु जी ने अहिंसा को ही श्रेष्ठ कहा है।' महाभारत का यह पूर्वोक्त कथन संघटित होता है। योगभाष्य में व्यास जी ने भी कहा है कि- 'सब प्रकार सब काल में सब प्राणियों से द्रोह न करनारूप अहिंसा ही परम धर्म है।' और अहिंसा का परमधर्म होना सर्वसम्मत है। और जो यह कहा था कि- 'वेदोक्त हिंसा हिंसा नहीं' उसका आशय यह है कि राजा वा अन्य धर्मरक्षक लोगों को उचित है कि दुष्ट, चोर, डाकू वा जो अपने मारने को शस्त्र लेकर सामने आता हो उसको तथा सांप, बीछू और सिंहादि हिंसक प्राणियों को मार डालें। यही वेदोक्त हिंसा है। क्योंकि इनको मारने के लिये वेदादि शास्त्रों में आज्ञा की गयी है। इससे यह वेदोक्त हिंसा है, यद्यपि इन चोर-दुष्टादि के मारने में भी पाप है क्योंकि उनके प्राण का वियोग होने से उनको क्लेश पहुंचता है, तो भी उनके बने रहने में जितना जगत् का अनुपकार होता है और उसके मारने से अन्यों को सुख होकर जितना पुण्य होता है, उसकी अपेक्षा पुण्य अधिक हो जाता है

इस कारण वेदोक्त हिंसा को हिंसा नहीं माना, किन्तु अहिंसा माना है। और जो मनु के भाष्यकर्त्ता सर्वज्ञनारायण ने कहा है कि- 'यज्ञ करने से वृष्टि, वर्षा से ओषधि, अन्न और वीर्य की परम्परा से उत्पत्ति होने पर मनुष्यादि प्राणियों के शरीर बनते हैं। इस कारण एक पशु को मारकर यज्ञ करने से अनेक प्राणियों की उत्पत्तिरूप निस्तार होकर पाप की अपेक्षा पुण्य बढ़ जाता है। इस कारण यज्ञ की हिंसा को अहिंसा माना है' सो यह युक्ति इस कारण ठीक नहीं है कि जिससे मांस को होम करना वृष्टि का कारण नहीं बनता किन्तु किसी प्रकार वृष्टि का हानिकारक है। जैसे आकाश में ताप के अधिक बढ़ने से वर्षा होती है [इसी कारण ग्रीष्म ऋतु में अधिक ताप बढ़ने से वर्षा अच्छी होती] और घृतादि के अधिक पड़ने से अग्नि में तेज बढ़ता है किन्तु मांस से नहीं। जलते हुए अग्नि में मांस छोड़ने से जलना भी ठीक-ठीक नहीं हो सकता किन्तु बुझ जाना सम्भव है। कदाचित् घी आदि की सहायता से वा इन्धन के ठीक शुष्क होने से मांस जल भी जावे तो उसमें से दुर्गन्ध उठेगा और वैसे दुर्गन्धगुणयुक्त वृष्टि के होने पर वैसे ही गुणों वाले उत्पन्न हुए ओषधि आदि पदार्थ प्राणियों के लिये अनुपकारी होंगे। यदि घी आदि के बिना ही केवल मांस के होम से वर्षारूप कार्य सिद्ध हो जावे तो सर्वज्ञनारायण का कहना बन सकता है सो तो इच्छामात्र के लड्डू खाना है अर्थात् असम्भव है। जब घृतादि की सहायता बिना मांस का होम कुछ भी उपकारी नहीं हो सकता तो वह उपकार घृतादि से हो सकना सिद्ध हो गया। इस कारण वेदोक्त हिंसा का पूर्वोक्त ही प्रयोजन जानना चाहिये। मांस खाना घृणित काम भी है। जैसे रुधिर आदि से घृणा होती वैसे बहुत विचारशीलों को मांस से भी घृणा रहती है, क्योंकि दूध से दही के समान रुधिर से ही मांस बनता है। इसी कारण इस मनुस्मृति के प्रायश्चित्तप्रकरण ग्यारहवें अध्याय में कहा है कि- 'मद्यमांसादि घृणित वस्तु यक्ष, राक्षस और पिशाचादि नाम वाले मनुष्यों का अन्न है।' अर्थात् मद्यमांसादि के खाने वालों का ही राक्षसादि नाम है। इसी से मांसभक्षण कर्म रजोगुण, तमोगुण का बढ़ाने वाला और सत्त्वगुण का नाशक है। जो मांस खाता है वह मद्य पीने को भी उद्यत होता और मद्यमांस के सेवन से मैथुन के लिये भी अधिक चेष्टा होती है। ऐसा होने पर धर्म, अर्थ और मोक्ष से विमुख हो जाता है। और क्षीणतादि से होने वाले बड़े-बड़े दुःखों को प्राप्त होता है। इससे भी मांस खाना बुरा फल देता है। धर्म का आचरण करने वाले मनुष्य को अपने आत्मा के तुल्य सबको सुख देना चाहिये। जब कोई मनुष्य सिंहादि मांसाहारियों को अपना मांस देने को उद्यत नहीं होता। तो उस मनुष्य को भी अन्य जीवों का मांस कदापि न खाना चाहिये। जैसे सब कोई चाहता है कि मेरा मांस कोई सिंहादि न खावे, वैसे ही आप भी किसी के मांस खाने को चित्त न करे ऐसा ही आचरण धर्मानुकूल है, इससे विपरीत को अधर्म जानो। इस कारण मांसभक्षण करना धर्म नहीं है। इस उक्त प्रकार से सब गुण-दोष विचारकर किसी को मांसभक्षण न करना चाहिये। यही धर्म और इससे विरुद्ध अधर्म है। आपत्काल में जब मांसभक्षण किये बिना किसी प्रकार निर्वाह नहीं हो सकता हो तब पूर्वोक्त विचारपूर्वक मांस खाना चाहिये। यह भी मांस की आज्ञा नहीं किन्तु पूर्वोक्त प्रकार संकोचपरक वाक्य है। अर्थात् मांस त्यागने की अपेक्षा यह संकोच भी श्रेष्ठ नहीं, किन्तु सामान्य प्रवृत्ति की अपेक्षा जाति आदि के भेद से प्रवृत्त होना थोड़े पाप और बुराई का हेतु है, यह वेदादि शास्त्रों का सिद्धान्त है। यद्यपि इस विषय पर पहले भी उपोद्घात में कई अवसरों पर लिख चुके हैं कि विधि, निषेध, सिद्धानुवाद और अर्थवाद को उन्हीं- उन्हीं के विचारानुसार लोग समझा करें, किन्तु अर्थवाद वा सिद्धानुवाद को विधिवाक्य कोई न समझ लेवे। तथा अपवाद वा विशेष वचन सामान्य वा उत्सर्ग का हानिकारक नहीं होता। ऐसा उलटा समझ लेने वाला मनुष्य अपनी और अन्य मनुष्यों की हानि कर लेता है। जैसे कहा गया कि ऋतु समय में केवल अपने वर्ण की स्त्री के साथ गमन करना चाहिये, यह सामान्य कर विधिवाक्य है। इसका

अपवाद वा विशेष वचन यह होगा कि अमुक-अमुक अवसर में ऋतु समय में भी गमन न करे वा अमुक-अमुक अवसर में ऋतु से भिन्न समय में भी गमन करें। इससे वह सामान्य विधान खण्डित नहीं होता। तथा ऋतु समय में स्त्री से समागम करने की आज्ञा को जब प्राय: लोग तोड़ डालते हैं और नित्य समागम करने में तत्पर होते हैं, उनको ऋतु समय का उपदेश कुछ भी कार्यसाधक नहीं होता किन्तु वे कदापि ऐसा नहीं कर सकते कि नित्य के भोजन को छोड़कर महीने भर में एक बार खावें तो ऐसी दशा में तीसरे चौथे वा आठवें दिन मैथुन का उपदेश किया जायें तथा किन्हीं-किन्हीं पर्वादि तिथियों में निषेध किया जायें तो सम्भव है कि वह निबाह ले। यह मैथुन का उपदेश नित्य की अपेक्षा विशेष सुख और कम हानिकारक होगा। परन्तु इस कथन से सामान्य वचन जो ऋतु समय में भार्यागमन का विधान है सो कटता नहीं है, अर्थात् ऋतु समय में गमन करने की अपेक्षा तीन चार आदि दिन के अन्तर से करना भी बुरा है। परन्तु नित्य की अपेक्षा अच्छा है। इसी प्रकार मांसप्रकरण में भी समझना चाहिये कि मांस का सर्वथा त्याग करना यही मुख्य आज्ञा है। और जो स्वयमेव उसमें अधिक प्रवृत्त है, उसको कम वा कभी खाने का उपदेश इसलिये नहीं कि मांस खाने की आज्ञा दी जावे वा मांस के निषेध का खण्डन किया जावे।

शोक-समाचार

भजनोपदेशक पण्डित मांमचन्द पथिक जी का निधन

रुड़की : आर्यजगत के प्रसिद्ध भजनोपदेश, सरल, सहृदय पण्डित मामचन्द आर्य पथिक जी का १ जुलाई २०२० को निधन हो गया। पण्डित जी का स्नेह गुरुकुल परिवार को सदैव प्राप्त होता रहा है। गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर पण्डित जी के भजनोपदेश से समस्त जनसमूह उपकृत होता रहा है। पण्डित मामचन्द पथिक जी का जाना हम सबके लिए अत्यन्त दु:खद है।पण्डित जी की कमी सदा बनी रहेगी। विनम्र श्रद्धांजलि...

श्रीमद्दयानन्द वैदिक गुरुकुल न्यास (परिषद्) द्वारा
स्नातक/स्नातिका पंजीकरण

(गुरुकुलों से अधीत समस्त छात्र/छात्राओं के निमित्त)

श्रीमद्दयानन्द वैदिक गुरुकुल न्यास (परिषद्) द्वारा समस्त गुरुकुलों से अधीत छात्र/छात्राओं, स्नातक/स्नातिकाओं (व्रतस्नातक, विद्यास्नातक, विद्याव्रतस्नातक) का विवरण एकत्रित किया जा रहा है, जिससे भविष्य में आयोजित की जाने वाली गतिविधियों को आप तक सरलता से प्रेषित किया जा सके। अत: आप सभी से निवेदन है कि अविलम्ब प्रपत्र पूर्ण करें तथा अपने मित्रों को भी इस प्रपत्र को पूर्ण करने के लिए प्ररित करें। प्रपत्र का लिंक 9411106104 (आचार्य डॉ. धनंजय) तथा 8810005096 (शिवदेव आर्य) से प्राप्त कर सकते हैं।

आपको सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि भारत के समस्त गुरुकुलों को एक पोर्टल पर देखने के लिए श्रीमद्दयानन्द वैदिक गुरुकुल न्यास (परिषद्) द्वारा वेबसाईट का निर्माण प्रगतिपथ पर है।

- स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती
अध्यक्ष (वैदिक गुरुकुल न्यास)

चरित्रनिर्माण किये बिना देशोन्नति सम्भव नहीं

❑ मनमोहन कुमार...✍

देश में भौतिक उन्नति की बातें बहुत की जाती है और कुछ सीमा तक देश में भौतिक उन्नति हुई भी है। परन्तु यह भी सच है कि इस उन्नति का लाभ देश के सभी नागरिकों को समान रूप से नहीं मिला। इसका प्रमुख कारण देश के नागरिकों का चरित्रवान न होना है। प्राचीन कहावत है **'यथा राजा तथा प्रजा'**। यह कहावत हमारे देश में चरितार्थ होती हुई प्रत्यक्ष होती है। यह निर्विवाद है कि देश की आजादी के बाद से ही देश में उच्च पदस्थ लोगों में भ्रष्टाचार रहा है जो समय के साथ बढ़ता ही गया। देश में हजारों करोड़ों के अनेक घोटाले हुए हैं। शायद 2जी स्ट्रेक्टम घोटाला देश का सबसे बड़ा घोटाला था जिसमें देश के शीर्षस्थ लोग सम्मिलित थे और आश्चर्य है कि सभी घोटालेबाज बच गये और घोटाले का पैसा वसूल नहीं हुआ। जिस देश में ऐसे एक नहीं अनेक घोटाले होते हों, उस देश के लोगों के चरित्र का अनुमान लगाया जा सकता है। यह भी आश्चर्य है कि यह घोटाले अशिक्षित व अज्ञानी लोगों ने नहीं वरन् समाज के सम्मानित व प्रतिष्ठित लोगों ने किये हैं। अत: देश कितनी भी भौतिक उन्नति क्यों न कर ले, उसका लाभ एक छोटा वर्ग ही लेता रहेगा। देश के सभी लोगों को देश की उन्नति का लाभ मिलना तो चाहिये परन्तु वह मिलेगा नहीं। देश की उन्नति का लाभ सभी लोगों को समान रूप से तभी मिल सकता है कि जब देश के सभी नागरिकों, मुख्यत: सत्ता के शीर्ष में बैठे हुए लोगों, का चरित्र आदर्श चरित्र हो तथा वह सभी मानवीय गुणों से युक्त हों। वह असत्य न बोलते हों और उनका आचरण भी असत्य से युक्त न होकर सत्य से युक्त हो। ऋषि दयानन्द ने सत्य आचरण को ही धर्म की संज्ञा दी है। इस दृष्टि से देखें तो देश में शायद कोई मत, संस्था व समाज इसका दावा नहीं कर सकता कि उसके सब आचार्य और अनुयायी सत्य का पूरी तरह से पालन व आचरण करते हैं। इसी से अनुमान लगा सकते हैं कि हमारे देश में धर्म व मानव चरित्र की अवस्था क्या है?

देश के लोगों का चरित्र आदर्श व उत्तम हो इसके लिये देश के सत्तारूढ़ दलों के शीर्ष नेताओं को सत्य के प्रति दृढ़ प्रतिज्ञ होना आवश्यक है। प्राचीन काल में हमारे राजा उत्तम चरित्र वाले होते थे। वर्तमान के नेताओं को वोट बैंक की राजनीति से ऊपर उठकर केवल सत्य और देश हित का चिन्तन करना चाहिये और राम, कृष्ण, चाणक्य, दयानन्द, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, लाल बहादुर शास्त्री, गुलजारीलाल नन्दा आदि के समान चरित्रवान होना चाहिये। वर्तमान समय में देश में श्री नरेन्द्र मोदी जी की सरकार है। इनके द्वारा विज्ञान व तकनीकि का प्रयोग कर अनेक स्थानों पर होने वाले भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाया गया है। वर्तमान समय में सरकार द्वारा जो धनराशि डायरेक्ट बैनिफिट ट्रांसफर के अन्तर्गत भेजी जाती है, वह पूरी की पूरी धनराशि खाताधारियों को मिलती है। विगत ८ वर्षों से बड़े भ्रष्टाचार का कोई प्रकरण भी सामने नहीं आया है। नीचले स्तर पर भ्रष्टाचार की बातें सुनने को मिलती हैं जिन्हें अवश्य ही दूर किया जाना चाहिये। सत्य के आचरण व चरित्र के प्रति देश में लोगों का विश्वास व आग्रह होना चाहिये। वेद मनुष्य को सत्य का आचरण करने की शिक्षा देते हैं। वैदिक जीवन ही

एकमात्र जीवन पद्धति है जो ईश्वर को सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सब मनुष्यों के कर्मों का साक्षी तथा सबको उनके सभी कर्मों का निष्पक्ष रूप से फल देने वाली एक ऐसी सत्ता है जो सब प्राणियों के प्रति आदर्श न्याय करती है। यह मान्यता को अनेक उदाहरण देकर सिद्ध किया जा सकता है। सभी मत मतान्तरों में ईश्वर को सर्वव्यापक व सभी जीवों के सभी कर्मों का पक्षपात रहित होकर बिना पापों को क्षमा किये दण्ड देने वाला नहीं माना जाता। यही पाप व भ्रष्टाचार का एक कारण प्रतीत होता है। जिस मत व समाज की मान्यता में मनुष्य को मन में विचार करने पर भी बुरे कामों का दण्ड मिलता हो, उस देश के लोग अपवादों को छोड़कर कोई बुरा काम नहीं कर सकते।

वैदिक धर्म ही एकमात्र ऐसा धर्म व जीवन पद्धति है जो ईश्वर को सर्वव्यापक और जीवों के सभी कर्मों का साक्षी मानते हुए बिना किसी कर्म को क्षमा किये उन सबका दण्ड देने वाली सत्ता के रूप में स्वीकार करती है। इन सिद्धान्तों को मानने के कारण प्राचीन काल से ही वैदिक धर्म में सत्याचारी ऋषि, मुनि, राम, कृष्ण, शंकराचार्य, चाणक्य और दयानन्द जैसे महापुरुष पैदा होते रहे। अत: देश से अनैतिकता, भ्रष्टाचार तथा सभी बुराईयों को दूर करने के लिये सबको वेदों की शरण में जाना होगा और उससे लाभ उठाते हुए वेद की शिक्षाओं को देश भर में प्रचारित व प्रसारित करना होगा। वेद व वेदानुकूल सिद्धान्तों के अनुरूप ही सब प्रकार के दण्डों का विधान करना होगा। त्वरित न्याय प्रणाली को विकसित करना होगा और अपराध करने वालों को शीघ्र कठोर व निष्पक्ष न्याय देना होगा। ऐसा होने पर ही देश में चरित्र निर्माण हो सकेगा और देश के सभी नागरिकों को न्याय मिल सकेगा। ऐसा करे ही देश की उन्नति हो सकती है और देश के सभी लोगों को उन्नति का लाभ मिल सकता है। इससे देश के लोग त्याग व तप के जीवन को महत्व देंगे तथा देश से सभी अंधविश्वास, मिथ्या सामाजिक परम्पराओं एवं अनिष्ट कार्यों का प्रचलन बन्द होगा। देश की सरकार सहित सभी धार्मिक एवं सामाजिक संगठनों को इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो देश इसी प्रकार से चलता रहेगा जहां देश के अशिक्षित एवं निर्धन लोगों को न्याय मिलना कठिन ही नहीं असम्भव प्रतीत होता है।

मनुष्य, मनुष्य समाज तथा देश की उन्नति सत्य नियमों के प्रचलन व उसका पालन करने से ही हो सकती है। देश से अज्ञान व अविद्या दूर करना देश के राजनीतिक दलों का मुख्य कार्य व संकल्प होना चाहिये। इस दिशा में जो कार्य किया जाना चाहिये, वह होता हुआ दिखाई नहीं देता। समाज को अलग अलग मत, धर्म व जाति के रूप में न देख कर सभी मनुष्यों को एक समान मनुष्य के रूप में देखना चाहिये। ईश्वर ने मनुष्यों व प्राणियों में उनके मत, पंथ, सम्प्रदाय आदि के आधार पर अन्तर व भेद नहीं किया है। सभी मतों में तथा संसार के सभी स्थानों पर एक ही ईश्वर ने सब मनुष्यों को दो आंख, दो कान, दो छिद्रो वाली एक नसिका, एक मुंह, दो पैर वाला सर्वत्र एक समान मनुष्य बनाया है। जो मनुष्यों में थोड़ा बहुत अन्तर होता है वह स्थानीय व भौगोलिक कारणों से होता है। मनुष्य की स्वाभाविक भाषा उसकी मातृभाषा होती है। वह चाहे तो संसार की किसी भी भाषा को सीख सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार में एक ही परमात्मा है और वह किसी के साथ किसी प्रकार का पक्षपात व भेदभाव नहीं करता। इसी प्रकार से देश की सरकार व सरकारों को भी मनुष्यों में धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र व परम्पराओं के आधार पर पक्षपात और भेदभाव नहीं करना चाहिये। सबकी उन्नति व विकास के लिये सद्धर्म तथा नैतिक शिक्षा को बाल्यकाल से ही अनिवार्य कर देना चाहिये।

इसके लिये वेदों के सिद्धान्तों व मान्यताओं को सभी नागरिकों को समान रूप से पढ़ाया जाना चाहिये। ईश्वर और आत्मा का सत्यस्वरूप भी देश के सभी बच्चों व युवाओं को बताया जाना चाहिये। मत-मतान्तरों के कारण समाज में जो पक्षपात व भेदभाव उत्पन्न होता है तथा मतान्तरण आदि की जो कुचेष्टायें एवं कार्य स्वार्थी लोग करते हैं, उनका भी विरोध किया जाना चाहिये। मतान्तरण में छल, बल, लोभ व असत्य का सहारा लिया जाता है। अत: मतान्तर पर पूर्ण प्रतिबन्ध के साथ कठोर दण्ड का प्रावधान होना चाहिये। मनुष्य जो नियम व परम्परायें बनाता है व जो नियम आदि बने हैं, वह नित्य व सर्वकालिक नहीं हो सकते। उन पर पुनर्विचार होते रहना चाहिये ओर उनमें कमियों व त्रुटियों को दूर कर उनका सुधार किया जाना चाहिये। यदि ऐसा नहीं होगा तो हमारा देश कदापि सुरक्षित नहीं रह सकता। छल करने वाले लोग अपने कुत्सित इरादों, योजनाओं व कार्यों में सफल हो जायेंगे जिसका परिणाम हमारी आगामी पीढ़ियों को लिये हानिकर व दु:खप्रद होगा।

मनुष्य का चरित्र सत्य नियमों की शिक्षा, प्रचार तथा तर्क द्वारा सत्य व असत्य का विचार करने से बनता है। चार वेद ही एकमात्र वह ग्रन्थ हैं जो सृष्टि के आदि में परमात्मा से आदि-मनुष्यों व ऋषियों को (जो सृष्टि के सब मनुष्यों के पूर्वज थे) प्राप्त हुए थे। वेदों की सभी मत-सम्प्रदायों को परीक्षा करनी चाहिये और उन पर परस्पर संवाद करना चाहिये। वेदों के सिद्धान्तों की समीक्षा कर उसके सभी सत्य सिद्धान्तों को देश में लागू करना चाहिये और उनका सबको सम्प्रदायवाद से ऊपर उठकर पालन करना चाहिये। वेद सत्य व न्याय को धारण करने की शिक्षा देते हैं। वेद में धर्म का अर्थ किसी व्यक्ति व आचार्य विशेष की सत्यासत्य शिक्षाओं का पालन न होकर केवल सत्य सिद्धान्तों का पालन होता है जिसका आविर्भाव परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में वेदों के द्वारा किया था। यदि सभी को आरम्भ काल से ही वेदों के सिद्धान्तों का अध्ययन कराया जायेगा और सभी ईश्वर का ध्यान करने सहित ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करते हुए अग्निहोत्र यज्ञ, माता-पिता की सेवा, आचार्यों, विद्वानों व अतिथियों की सेवा सहित सभी प्राणियों वा पशु-पक्षियों आदि पर दया व करूणा का भाव रखते हुए पूर्ण अहिंसा का पालन करेंगे, तभी मनुष्यों का चरित्र निर्माण होगा और देश पक्षपात रहित होने के साथ भ्रष्टाचार से भी मुक्त हो सकता है। ऋषि दयानन्द ने इस कार्य को आरम्भ किया था और सत्य के निर्णयार्थ सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ का प्रणयन किया था। सत्यार्थप्रकाश साम्प्रदायिकता से रहित होने सहित सच्ची मानवता का पोषक ग्रन्थ है। इसमें संसार के सभी मनुष्यों को परस्पर समान और एक ईश्वर की सन्तान बताया गया है। सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ में सभी ज्ञेय विषयों की चर्चा है और उनका वेदसम्मत सत्य व तर्कयुक्त समाधान दिया गया है। देश के सभी नागरिकों को सत्यार्थप्रकाश पढ़ना चाहिये। इसकी मान्यताओं व सिद्धान्तों पर सत्यासत्य की दृष्टि से खुलकर बहस करनी चाहिये और सत्य को अपनाना चाहिये। सत्य ही मानव जाति की उन्नति का प्रमुख कारण है। मनुष्य कितना भी ज्ञान क्यों न प्राप्त कर ले परन्तु यदि उसके आचरण में सत्य नहीं है तो न तो उसका चरित्र बन सकता है और न ही कल्याण हो सकता है। शायद इसी कारण देश ने उपनिषद वाक्य ''सत्यमेव जयते नानृतम्" अर्थात् 'सदा सत्य की ही जय होती है असत्य की नहीं' के सिद्धान्त को मान्यता दी थी। क्या इस सिद्धान्त वाक्य का देश में सर्वत्र पालन हो रहा है? इस पर सबको विचार करना चाहिये।

- चुक्खूवाला, देहरादून

योगदर्शनशिक्षणम्

❑ शिवदेव आर्यः...✍

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्

(योगदर्शन.-१/१६)

पदार्थव्याख्या-तत्=वह **परम्**=परवैराग्य **पुरुषख्यातेः**= जीवात्मा का साक्षात्कार होने से **गुणवैतृष्ण्यम्**=गुणमात्र से तृष्णा रहित हो जाना है।

सूत्रार्थ-जब जीवात्मा के साक्षात्कार से गुणमात्र से तृष्णारहित हो जाता है, तब परवैराग्य उत्पन्न होता है।

व्यासभाष्य- दृष्टानुश्रविकविषयदोषदर्शी विरक्तः पुरुषदर्शनाभ्यासात्तच्छुद्धिप्रविवेकाप्यायितबुद्धिर्गुणेभ्यो व्यक्ताव्यक्तधर्मकेभ्यो विरक्त इति। तद्द्वयं वैराग्यम्। तत्र यदुत्तरं तज्ज्ञानप्रसादमात्रम्। यस्योदये प्रत्युदितख्यातिरेवं मन्यते-प्राप्तं प्रापणीयं, क्षीणाः क्षेतव्याः क्लेशाः, छिन्नः श्लिष्टपर्वा भवसंक्रमः, यस्याविच्छेदाज्जनित्वा म्रियते मृत्वा च जायत इति। ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम्। एतस्यैव हि नान्तरीयकं कैवल्यमिति।

व्यासभाष्य पदार्थ व्याख्या- दृष्टानुश्रविकविषय-दोषदर्शी=दृष्ट और अनुश्रविक विषयों में दोषों=नश्वरता, परिणाम, राग, द्वेष और दुःख आदि को देखने वाला **विरक्तः**=विषयों से विरक्त **पुरुषदर्शनाभ्यासात्**=पुरुष= आत्म दर्शन के अभ्यास से **तत्**=वह **शुद्धेः**=जीवात्मा की शुद्धि अर्थात् निर्मलता के द्वार **प्रविवेकः**=प्रकृष्ट विवेकज्ञान से **आप्यायितबुद्धिः**=परिपूर्ण होकर **व्यक्ताव्यक्तधर्मकेभ्यः**=अभिव्यक्त धर्म वाले और अनभिव्यक्त धर्म वाले **गुणेभ्यः**=सत्त्व, रज और तम गुणों से **विरक्तः**=विरक्त हो जाता है, अर्थात् पर-वैराग्य को प्राप्त हो जाता है। **तद्**=वह **द्वयम्**=दो प्रकार का **वैराग्यम्**=वैराग्य है-अपर और पर। **तत्र**=उन दोनों वैराग्यों में **यत्**=जो **उत्तरम्**=दूसरा वैराग्य है **तत्**=वह **ज्ञानप्रसादमात्रम्**=ज्ञान का चरमकोटि विकास है। **यस्य उदये**=जिस के उदय होने पर **प्रत्युदितख्यातिः सति**=उदित हो गई है परमात्मदर्शन से ख्याति जिसकी अर्थात् **योगी**=परमात्मदर्शी योगी **एवं मन्यते**=यह मानता है कि **प्राप्तम् प्रापणीयम्**=प्राप्त करने योग्य प्राप्त हो गया है; **क्षीणाः क्षेतव्याः क्लेशाः**=क्षीण करने योग्य पांचों क्लेश नष्ट हो गये हैं **श्लिष्टपर्वा**=सम्मिलित पूर्वों वाला **भवसंक्रमः**=एक देह से दूसरे देह की प्राप्ति रूप संसार का आवागमन का चक्र **छिन्नः**=छिन्न-भिन्न हो गया है **यस्य**=जिस संसार चक्र के **अविच्छेदात्**=विच्छेद न होने से प्राणी **जनित्वा**=उत्पन्न होकर **म्रियते**=मरता है **च**=और **मृत्वा**=मरकर **जायत इति**=जन्म लेता रहता है। **ज्ञानस्य**=ज्ञान की **एव**=ही **पराकाष्ठा**=पराकाष्ठा अर्थात् उत्कृष्ट सीमा **वैराग्य**=वैराग्य है। **हि**=क्योंकि **एतस्य एव**=इसी **पर-वैराग्य**=ज्ञान का ही **न अन्तरीयकम्**=अविनाभावी=अवश्यम्भावी होने वाला **कैवल्यम् इति**=मोक्षस्वरूप फल है।

व्यासभाष्य व्याख्या- देखे हुए तथा सुने हुए विषयों के दोषों को देखने वाला तृष्णारहित साधक, पुरुष के दर्शन के अभ्यास से, उस पुरुषतत्त्व के बोध से प्राप्त ज्ञान से तृप्त चित्त वाला होकर, स्थूल और सूक्ष्म स्वरूप वाले गुणों से भी विरक्त हो जाता है। वह दो प्रकार का वैराग्य है - १. अपर, २. पर। इनमें से जो पश्चात् कहा है वह उच्चज्ञान की कोटि वाला है। जिसके उदित होने पर आत्मदर्शी योगी यह मानता है कि प्राप्त करने योग्य प्राप्त हो गया। नष्ट करने योग्य क्लेश नष्ट हो गये और शृंखलाबद्ध संसारचक्र टूट गया। जिससे टूटे बिना जीव जन्म लेकर मरता एवं मरकर जन्म लेता रहता है। ज्ञान की पराकाष्ठा ही वैराग्य है। यह वैराग्य कैवल्य का अनिवार्य साधन है।

शेष अग्रिम अंक में...

-गुरुकुल पौन्धा, देहरादून (उ.ख.)

संस्कृतशिक्षणम्

❑ शिवदेव आर्य...

क्रमशः...

सम्प्रदान कारक एवं चतुर्थी विभक्ति विचार

- **कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्** - जिसे उद्देश्य बनाकर कर्ता क्रिया करता है या जिसे कोई वस्तु दी जाती है, वह सम्प्रदान कारक होता है। यथा - **बालकः जनकाय फलं ददाति।** (बालक पिता के लिए फल देता है।) **विमर्श** - उक्त उदाहरण वाक्य में बालक पिता को उद्देश्य बनाकर तथा फल रूपी वस्तु देने की क्रिया कर रहा है, अतः जिसको वस्तु दी जा रही है अथवा जिसको उद्देशित करके कार्य हो रहा है उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। और सम्प्रदान कारक में **चतुर्थी सम्प्रदाने** सूत्र से चतुर्थी विभक्ति होती है। **विशेष** - जिस वस्तु को देने की क्रिया सर्वथा के लिए की जाये, उसी में सम्प्रदान कारक होगा, यदि वस्तु देकर ले ली जायेगी तो सम्बन्ध होगा। **यथा - तेजवीरः रजकस्य वस्त्रं ददाति।** (तेजवीर धोबी को कपड़ा देता है।) **विमर्श**-यहाँ पर कर्ता तेजवीर कपड़ा सर्वथा नहीं देता, पुनः वापस ले लेता है, अतः **'रजकस्य'** में चतुर्थी विभक्ति न होकर षष्ठी विभक्ति हुयी है।
- **चतुर्थी सम्प्रदाने**-सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति होती है।
- **क्रियया समभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्**-केवल दान कर्म द्वारा ही नहीं अपितु किसी विशेष क्रिया द्वारा तो इष्ट अभिप्रेत हो वह भी सम्प्रदान कारक कहलाता है। **यथा-यागी मुक्तये ईश्वरं भजति।** (योगी मुक्ति के लिए ईश्वर को भजता है।) **विमर्श**-यहाँ पर मुक्ति प्रयोजन है, अतः **'मुक्तये'** में चतुर्थी विभक्ति हुयी है।

  जब कोई कार्य किसी दूसरे फल की प्राप्ति के लिए किया जाता है, तब उस फल में चतुर्थी विभक्ति होती है। **यथा-विद्या ज्ञानाय कल्पते।**(विद्या ज्ञान के लिए होती है।) **विमर्श**-यहाँ पर विद्या रूपी का कार्य ज्ञान रूपी फल की प्राप्ति करा रहा है, अतः फलरूपी **ज्ञानाय** में चतुर्थी विभक्ति होती हुई है।

  जिस वस्तु के बनाने के लिए किसी दूसरी वस्तु का अस्तित्व रहता है, उसे बनने वाली वस्तु में चतुर्थी विभक्ति होती है। **यथा-आभूषणाय सुवर्णम्।** (आभूषण के लिए सोना।) **विमर्श**-यहाँ आभूषण बनाने के लिए सोने का प्रयोग हो रहा है, अतः बनने वाले **आभूषणाय** में चतुर्थी विभक्ति हुई।
- **उत्पातेन ज्ञापितेन च**-कोई उत्पात या किसी अशुभ घटना का सूचक हो तो उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। **यथा-वाताय कपिला विद्युत्।** (लाल बिजली आँधी की सूचना देती है।) **विमर्श**-यहाँ पर अशुभ घटना आँधी की दिखाई दे रही है, अतः **वाताय** में चतुर्थी विभक्ति हुई है।
- **हितयोगे च**-हित तथा सुख के साथ चतुर्थी विभक्ति होती है। **यथा-बालकाय हितम्/सुखं भूयात्।** (बालक का हित/सुख होवें।) **विमर्श** - यहाँ पर बालक के लिए हित/सुख शब्द का प्रयोग हुआ है, अतः **बालकाय** में चतुर्थी विभक्ति हुई है।
- **गत्यर्थकर्मणि द्वितीया चतुर्थ्यौ चेष्टायसामध्वनि**-गत्यर्थक धातु के साथ यदि चेष्टा हो तो द्वितीया अथवा चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा - **विक्रान्तः ग्रामम्/ग्रामाय गच्छति।** (विक्रान्त ग्राम को जाता

है।) **विमर्श** - यहाँ पर विक्रान्त चेष्टा करता हुआ गति कर रहा है, अतः **'ग्रामम्/ग्रामाय'** शब्द में द्वितीया/चतुर्थी विभक्ति हुई है।

- **रुच्यर्थानां प्रीयमाणः**-रुच् धातु तथा अच्छा लगने वाली धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाले में चतुर्थी विभक्ति होती है। **यथा-शिवाय वेदपठनं रोचते।** (शिव को वेद पढ़ना अच्छा लगता है।) **विमर्श**-यहाँ पर रुच् धातु का प्रयोग हुआ है, शिव को वेद पढ़ना अच्छा लग रहा है, अतः **शिवाय** में चतुर्थी विभक्ति हुई है।
- **स्पृहेरीप्सितः**-स्पृह् (चाहना) धातु के योग में जिसे चाहा जाये, उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। **यथा-युवती पुष्पेभ्यः स्पृहयति ।** (युवती पुष्पों को चाहती है।) **विमर्श** - यहाँ पर युवती के द्वारा पुष्पों को चाहा जा रहा है, अतः **पुष्पेभ्यः** में चतुर्थी विभक्ति हुई है।
- **धारेरुत्तमर्णः**-धारि (णिजन्त धृञ्) (कर्ज लेना या उधार लेना) धातु के अर्थ में कर्ज देने वाले में चतुर्थी विभक्ति होती है। **यथा - सुनीतः विजयाय शतं धारयति।** (सुनीत ने विजय से सौ रुपये ऋण लिये हैं।) **विमर्श** - यहाँ पर धारि धातु के अर्थ में सुनीत ने विजय से सौ रुपये का ऋण लिया है, ऋण देने वाला विजय है, अतः **विजयाय** में चतुर्थी विभक्ति हुई है।
- **मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु**-जब अनादर दिखाया जाय तब मन् (समझना) धातु के कर्म में, यदि वह प्राणी न हो, तो विकल्प से चतुर्थी भी होती है, यथा-**अहं धनवन्तं तृणम्/तृणाय मन्ये।** (मैं धनी को तृणवत् समझता हूँ।) **विमर्श**-यहाँ पर धनी तृण के समान है तथा वह तृण प्राणी न होने तथा मन् धातु का प्रयोग होने से तृण में चतुर्थी विभक्ति हुई है।
- **राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः**(अ.१/४/३९)-जब शुभ-अशुभ अर्थ के लिए राध् और ईक्ष् धातुओं का प्रयोग किया जाये तब जिसके विषय में प्रश्न किया जा रहा है, उसमें चतुर्थी विभक्ति होगी। यथा - **भरतः रामाय राध्यते/ईक्षते।** (भरत राम का समाचार पूछता है।) **विमर्श** - यहाँ पर राम के विषय में शुभ-अशुभ अर्थ के के लिए राध् और ईक्ष् धातु का प्रयोग किया गया है, अतः **रामाय** में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग किया गया है।
- **नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च।** (अ. २/३/१६) नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम्, वषट्, इन शब्दों का प्रयोग जिसके लिए किया जाये उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा - **ईश्वराय नमः।** (ईश्वर को नमस्कार), **नृपाय स्वस्तिः,** अग्नये स्वाहा। (अग्नि के लिए आहुति।), **पितृभ्यः स्वधा।** (पितृगणों के लिए स्वधा)**, अलं मल्लः मलाय।** (पहलवान् के लिए पहलवान् पर्याप्त है।) इन्द्राय वषट्।
- **क्रुधदुहेर्ष्यार्थानां यं प्रति कोपः** (अ. १/४/३७) क्रुध्, दुह्, ईर्ष्य्, असूय् धातुओं के योग में तथा इन धातुओं के समान अर्थ वाले धातुओं के योग में जिस पर क्रोध आदि किया जाये उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा - पिता पुत्राय क्रुध्यति। (पिता पुत्र पर क्रोध करता है।), **दुष्टः सज्जनेभ्यः द्रुह्यन्ति।** (दुष्ट सज्जन से द्रोह करता है।), **सारांशः अनिरुद्धाय ईर्ष्यति।** (सारांश अनिरुद्ध से ईष्या करता है।), खलः सज्जनाय असूयति। (दुष्ट सज्जन में दोष निकालता है।) **विमर्श**-उक्त वाक्यों में क्रोध/द्रोह/ईष्या/असूय जिस पर किया जा रहा है, उसमें चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग किया गया है।
- **क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म** (अ. १/४/३८) जब क्रुध् तथा दुह् धातु उपसर्ग के सहित होगी तब जिस पर क्रोध या द्रोह किया जायेगा, उसमें द्वितीया विभक्ति होगी। यथा-**गुरुः शिष्यं संक्रुध्यति/संद्रह्यति।** (गुरु शिष्य पर क्रोधित होता है/द्रोह करता है) **विमर्श**-पूर्व सूत्र में क्रुध् तथा दुह्

धातु के साथ चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग किया गया था किन्तु क्रुध् और दुह् धातु जब उपसर्ग के साथ होती तब द्वितीया विभक्ति होगी। यहाँ वाक्य में संक्रुध्यति/संद्रह्यति का प्रयोग शिष्य के लिए किया गया है, अतः **शिष्याय** में चतुर्थी विभक्ति हुयी है।

- **प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्त्ता** (अ.१/४/४०) प्रति और आङ् उपसर्ग पूर्वक श्रु धातु का प्रयोग प्रतिज्ञा करने अर्थ में जिसके लिए प्रतिज्ञा की जा रही है, ऐसे में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा – **यज्ञदत्तः देवदत्ताय गां प्रतिशृणोति/आ शृणोति।** (यज्ञदत्त देवदत्त को गाय देने की प्रतिज्ञा करता है।) **विमर्श** – यहाँ पर प्रति तथा आङ् उपसर्ग पूर्वक श्रु धातु का प्रयोग प्रतिज्ञा करने में हुआ है, अतः प्रतिज्ञा देवदत्त के लिए की जा रही है, अतः देवदत्ताय में चतुर्थी विभक्ति हुयी है।
- **परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्** (अ० १/४/४४) परिक्रयण (निश्चित अवधि के लिए किसी को वेतन पर रखा जाये) में जिससे (वस्तु आदि) खरीदा जाये, उसमें विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा – **रामेण अध्यापकः शताय/शतेन परिक्रीतः।** (राम ने अध्यापक को सौ रुपये के वेतन पर रखा) **विमर्श** – यहाँ अध्याय को सौ रुपये के वेतन पर राम ने रखा है, सौ रुपये के द्वारा परिक्रमण किया गया है, अतः शताय/शतेन में चतुर्थी विभक्ति तथा विकल्प से तृतीया विभक्ति हुयी है।

अपादान कारक एवं पञ्चमी विचार

- **ध्रुवमपायेऽपादानम्** (अ. १/४/२४) अलग होने की क्रिया में जिस अवधि से (जहाँ से वह वस्तु अलग हो रही हो वह अवधि) कोई वस्तु अलग होती है, तो उस अवधि की अपादान संज्ञा होती है। यथा – **बालकः वृक्षात् फलं त्रोटयति।** (बालक वृक्ष से फल तोड़ता है।) उक्त उदाहरण में में बालक वृक्ष से फल तोड़ रहा है, अतः वृक्ष पृथक् हो रहा है अर्थात् यहाँ वृक्ष अवधि है, अतः वृक्ष की अपादान संज्ञा होने से **'वृक्षात्'** में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।
- **अपादाने पञ्चमी** (अ.२/३/२८) अपादान कारक में पञ्चमी विभक्ति होती है।
- **भीत्रार्थानां भयहेतुः** (अ. १/४/२५) भय तथा रक्षा के अर्थवाली धातुओं के साथ भय के कारण में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा – **सज्जनः दुर्जनात् बिभेति।** (सज्जन दुर्जन डरता है।) **विमर्श**–यहाँ पर भय के अर्थ वाली भी धातु का प्रयोग किया गया है, अतः भय का कारण दुर्जन होने से **दर्जनात्** में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।
- **जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् वा.** जुगुप्सा (धृणा), विराम (बन्द होना, हटना), प्रमाद (भूल, असावधानी) अथवा इनके समानार्थक शब्दों के साथ पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा – **पापात् जुगुप्सते।** (पाप से घृणा करता है।), **अधर्मात् विरमति।** (अधर्म से हटता है।), **स्वाध्यायात् मा प्रमदः** (स्वाध्याय से प्रमाद मत करो।) **विमर्श** – उपरोक्त उदाहरणों में जुगुप्सते, विरमति, प्रमद शब्दों को प्रयोग हुआ है, अतः ये शब्द जिसके लिए प्रयुक्त होंगे उनमें **पापात्, अधर्मात्, स्वाध्यायात्** में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।
- **वारणर्थानाममीप्सित** (अ. १/४/२७) जिस वस्तु से किसी को हटाया जाये, उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा–**क्षेत्रात् गां वारयति**। (खेत से गाय को हटाता है।) **विमर्श**–यहाँ पर खेत से गाय को हटाया जा रहा है, अतः **क्षेत्रात्** में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।
- **आख्यातोपयोगे** (अ. १/४/२९) जिससे नियमपूर्वक विद्या अध्ययन किया जाय, उस गुरु या अध्यापक आदि में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा – **देवदत्तः उपाध्यायात् अधीते।** (देवदत्त उपाध्याय से पढ़ता

है।) **विमर्श**-यहाँ पर देवदत्त उपाध्याय से नियमपूर्वक पढ़ता है, अतः जिससे पढ़ा जा रहा है, उस **उपाध्यायात्** में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

- **पराजेरसोढः** (अ. १/४/२६) परा पूर्वक जि धातु के कारक में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा - **मोहनः अध्ययनात् पराजयते।** (सोहन अध्ययन से भागता है।) **विमर्श** - यहाँ परा पूर्वक जि धातु का कारक अध्ययन है, अतः **अध्ययनात्** में पञ्चमी विभक्ति हुयी है।
- **अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति** (अ. १/४/२८) जब कोई अपने को छिपाता है, तब जिससे छिपाता है, उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा - **कृष्णः मातुः निलीयते।** (कृष्ण माता से छिपता है।) **विमर्श**-यहाँ पर छिपने की क्रिया माता से की जाय रही है, अतः **मातुः** में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग किया है।
- **जनिकर्तुः प्रकृतिः** (अ. १/४/३०) जन् धातु के कर्ता में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा - **ब्राह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते।** (ब्रह्मा से समस्त प्रजा उत्पन्न होती है।) **विमर्श** - यहाँ जन् धातु का प्रयोग हुआ है, अतः जन् धातु के कर्ता **ब्राह्मणः** में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग किया है।
- **भुवः प्रभवश्च** (अ. १/४/३१) उत्पत्ति अर्थ में भू धातु का प्रयोग होने पर उत्पत्तिस्थल में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा - **हिमालयात् गंगा प्रभवति।** (हिमालय से गंगा निकलती है।) **विमर्श** - यहाँ पर उत्पन्न अर्थ में भू धातु का प्रयोग हुआ है और उत्पत्तिस्थल **हिमालयात्** में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।
- **यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी। तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ। कालात् सप्तमी च वक्तव्या।** (वा.) जिस स्थान या काल (समय) से किसी दूसरे स्थान या काल की दूरी दिखायी जाती है, उस स्थान या काल पञ्चमी विभक्ति होती है और उस स्थान का वाचक शब्द प्रथमा या सप्तमी में रखा जाता है।
- **पञ्चमी विभक्ते** (अ. २/३/४२) तुलना में जिससे तुलना की जाये, उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा-**धनात् ज्ञानं गुरुतरम्।** (धन से ज्ञान अधिक भारी है।) **विमर्श** - यहाँ धन से ज्ञान की तुलना की जा रही है, अतः धन में पञ्चमी विभक्ति हुयी है।
- **आङ्मर्यादावचने** (अ. १/४/८९) तक, जहाँ तक, मर्यादा अर्थ में 'आ' के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है, यथा - **आ मुक्तेः संसारः।** (मुक्ति तक संसार है।) **विमर्श** - यहाँ पर तक अर्थ में आ का प्रयोग किया है, अतः **मुक्तेः** पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।
- **अपपरी वर्जने** (अ. १/४/८८) अप (छोडकर), परि (छोड़कर) इन उपसर्गों के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा - **अप हरेः।** (हरि को छोडकर), **परि रामात्।** (राम को छोडकर)। **विमर्श** - छोडने अर्थ में अप और परि उपसर्गों का प्रयोग किया गया है, अतः **हरेः** व **रामात्** में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग किया गया है।
- **प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्** (अ. २/३/११) प्रतिनिधि या प्रतिदान (विनिमय) के अर्थ में प्रति के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा - **अयं गुरुकुलात् प्रति।** (यह गुरुकुल का प्रतिनिधि है।), **तिलेभ्यः माषान् प्रतियच्छति।** (तिलों के बदले उड़द देता है।) **विमर्श** - यहाँ पर प्रतिनिधि अर्थ में **गुरुकुलात्** में पञ्चमी हुयी है और प्रतिदान अर्थ में जिससे कोई चीज बदली जाये, उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है, अतः **तिलेभ्यः** में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

शेष अग्रिम अंक में...

-गुरुकुल पौन्धा, देहरादून

गुरुकुल पौन्धा का स्थापना दिवस निर्विघ्न सम्पन्न

पौन्धा, देहरादून : श्रीमद्दयानन्द आर्ष ज्योतिर्मठ गुरुकुल पौन्धा देहरादून का वार्षिकोत्सव प्रतिवर्ष जून मास के प्रथम सप्ताह के शुक्र, शनि व रविवार को आयोजित किया जाता है। इस वर्ष भी वैश्विक महामारी के चलते वार्षिकोत्सव का आयोजन करना अत्यन्त कठिन प्रतीत हो रहा था, क्योंकि सरकार का निर्देश था कि कोरोना रुपी महामारी के कारण लोग घर से बाहर न निकलें, समूह में एकत्रित न हों, ऐसी स्थिति में गुरुकुल का उत्सव कैसे आयोजित किया जाये, यह एक गम्भीर प्रश्न था। आचार्य डॉ. धनंजय का दृढ़निश्चय था कि कार्यक्रम को निश्चित रुप से आयोजित किया जाना है पर कैसे हो, इसके लिए चिन्तिन थे। किन्तु जब कार्य करने की दृढ़ इच्छाशक्ति हो तो कार्य सम्पादित हो ही जाता है। आचार्य जी ने विचार किया कि हम इस कार्यक्रम को लाइव प्रसारित करें। लाइव के लिए इंटरनेट की महती आवश्यकता थी। येन-केन प्रकारेण २९ मई २०२० की रात्रि तक इंटरनेट की व्यवस्था हुयी। आचार्य जी ने १ जून २०२० से यजुर्वेद पारायण महायज्ञ का आयोजन रखा। इस यज्ञ के यजमान पण्डित वेदवसु शास्त्री, मॉरिशस से पधारे पण्डित शिवशंकर रामखिलावन तथा गुरुकुल के स्नातकवृन्द बनें। यज्ञ का संचालन ब्रह्मा डॉ. महावीर (प्रतिकुलपति, पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार) यज्ञाध्यक्ष आचार्य यज्ञवीर के मार्गदर्शन में किया गया। इस यज्ञ में शासन के नियमों का पूर्ण पालन करते हुए सोशल डिस्टेंशिंग का ध्यान दिया गया। आर्यसमाज के इतिहास में इस प्रकार से कार्यक्रम का आयोजन प्रथम बार हुआ।

गुरुकुल के २० वां स्थापना दिवस का आयोजन ५,६ एवं ७ जून २०२० को किया गया है।

इस कार्यक्रम का सजीव प्रसारण फेसबुक द्वारा किया गया। देश-विदेश के विभिन्न विद्वानों को जोड़कर गुरुकुल से यज्ञ आदि कार्यक्रमों का सीधा प्रसारण प्रसारित किया गया।

इस कार्यक्रम में स्वामी आर्यवेश (प्रधान, सार्वदेशिक सभा), प्रो. महावीर (प्रतिकुलपति, पतंजलि विश्वविद्यालय), डॉ. रघुवीर वेदालंकार, डॉ. सोमदेव शास्त्री (मुम्बई), डॉ. ज्वलन्त कुमार (अमेठी), डॉ. विनय विद्यालंकार (प्रधान, उत्तराखण्ड आर्य प्रतिनिधि सभा), श्री विनय आर्य (मन्त्री, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा), डॉ. धर्मेन्द्र कुमार (पूर्वसविच, दिल्ली संस्कृत अकादमी), श्री विश्रुत आर्य (अमेरिका), डॉ. योगेन्द्र याज्ञिक (होशंगाबाद), पण्डित नरेशदत्त आर्य (भजनोपदेशक, बिजनौर), डॉ. अन्नपूर्णा (द्रोणस्थली आर्ष कन्या गुरुकुल), आचार्य यज्ञवीर, डॉ. कल्पना आर्या (दिल्ली), आचार्या श्रुति शास्त्री (भजनोपदेशिका, जयपुर) आचार्य मनुदेव वाग्मी (ओडिसा), पण्डित शिवशंकर रामखिलावन (मॉरिशस), पण्डित भूषण चमन (मॉरिशस), डॉ. रवीन्द्र कुमार (हरिद्वार), डॉ. अजीत कुमार (दिल्ली), श्री सौरभ आर्य (दिल्ली), श्री वेदप्रकाश आर्य (देवरिया), श्री सुखदेव आर्य (अलीगढ़) आदि विद्वानों ने सम्बोधित किया।

इस अवसर पर गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने अपने व्याख्यान, भजन, कविता आदि प्रस्तुत किये।

इस वर्ष गुरुकुल के चार नवस्नातकों ब्र. अंकित आर्य, ब्र. राहुल आर्य, ब्र. सूर्यप्रताप आर्य एवं ब्र. गौरव आर्य को सम्मानित किया गया। नवस्नातकों ने परम्परानुसार अपने आचार्यों का सम्मान किया।

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी स्वर्गीय श्री देवदत्त वाली जी एवं स्वर्गीया श्रीमती सरला बाली जी तथा स्वर्गीय कर्नल वीरेन्द्र भाटिया जी की स्मृति में ब्रह्मचारियों को सम्मानित किया गया।

कार्यक्रम में स्वर्गीय पण्डित राजवीर शास्त्री जी एवं स्वर्गीय पण्डित भीमसेन वेदवागीश जी की स्मृति में गुरुकुल पौन्धा के यशस्वी स्नातक 'आर्ष-ज्योतिः' मासिक पत्र के कार्यकारी सम्पादक तथा इंटरनेट के माध्यम से २० वें स्थापना दिवस का सजीव प्रसारण को कराने

वाले प्रिय शिवदेव आर्य को सम्मानित किया गया। सम्मान की सम्पूर्ण व्यवस्था स्वर्गीय पण्डित राजवीर शास्त्री जी के जेष्ठपुत्र श्री विनय आर्य (मोदीनगर) व परिवार के सभी सदस्य तथा स्वर्गीय पण्डित भीमसेन वेदवागीश जी के सुपुत्र श्री देवेन्द्र शेखावत (चित्तौड़गढ़) के सौजन्य से की गयी। गुरुकुल परिवार आपका आभार व्यक्त करता है।

७ जून को यजुर्वेद पारायण महायज्ञ एवं स्थापना दिवस की पूर्णाहुति की गयी। इस अवसर पर ब्रह्मचारियों ने व्यायाम सम्मेलन का आयोजन किया।

कार्यक्रम के समापन पर आचार्य डॉ. धनंजय ने समस्त सहयोगियों तथा विद्वानों का धन्यवाद ज्ञापन किया। अन्त में पूज्य स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी ने सभी को अपना आशीर्वाद प्रदान कर उत्साहित बने रहने का सन्देश दिया।

आचार्य डॉ. धनंजय जी ने यह भी अवगत कराया कि वह अप्रैल व मई में गुरुकुल के लिये अन्न व धनसंग्रह के कार्यक्रम में निकटवर्ती स्थानों में जाते थे। गुरुकुल वार्षिकोत्सव में ऋषिभक्तों से गुरुकुल के लिये वर्ष भर किये जाने वाले खर्च की आंशिक आपूर्ति भी होती थी। इस वर्ष आचार्य जी गुरुकुल से बाहर नहीं जा सके। ऐसी स्थिति में भी गुरुकुलप्रेमियों ने फोन करके उन्हें सहयोग का आश्वासन सूचित किया। गुरुकुल के पूर्व स्नातकों ने भी इस अवसर पर अपनी मातृसंस्था को आर्थिक सहयोग किया है। ऐसा किया जाना कर्तव्य था जो कि अति प्रशंसनीय है।

गुरुकुल पौंधा के स्थापना दिवस पर गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने पूरे उत्साह से तैयारियां की थीं। सम्पूर्ण भवनों की लिपाई-पुताई की गई थी तथा यज्ञशाला को भव्य रूप में सजाया व संवारा गया था। अतः यह सब फेसबुक के माध्यम से देख व सुनकर सभी श्रोताओं को प्रसन्नता हुई। यह भी बता दें कि गुरुकुल के उत्सव के मुख्य कार्यक्रम के दर्शकों की संख्या पांच हजार से अधिक रही। कोरोना संकट के समय गुरुकुल उत्सव का फेसबुक व यूट्यूब आदि से प्रसारण करके गुरुकुल ने एक नयी परम्परा को जन्म दिया है। इस कार्य के लिये आचार्य डॉ. धनंजय और शिवदेव आर्य की जितनी भी प्रशंसा की जाये कम होगी। हमने देखा है कि अनेक संस्थाओं ने इस कोरोना संकट के मध्य पड़े अपने आयोजनों को निरस्त किया है। हमारे विद्वान एवं भजनोपदेशक अपने घरों पर हैं। उनकी सेवाओं का लाभ नहीं लिया जा पा रहा है। ऐसे समय में गुरुकुल ने देश के अनेक भागों के विद्वानों को उत्सव से जोड़कर विद्वानों एवं गुरुकुल प्रेमियों के लिये एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया है।

इस कार्यक्रम की प्रायः समस्त विडियो गुरुकुल के यूट्यूब चैनल-Gurukulpondhadehradun पर प्राप्त कर सकते हैं। लाइव प्रसारित कार्यक्रम गुरुकुल के फेसबुक पेज-Gurukulpondhadehradun पर जाकर प्राप्त कर सकते हैं।

गुरुकुल उत्सव का समापन पूर्णतः सफल रहा, जिसकी कल्पना न तो गुरुकुल के अधिकारियों और न ही गुरुकुल के शुभचिन्तकों को पूर्व में थी। गुरुकुल ने अपने २० वर्ष के जीवन काल में अनेक उपलब्धियां प्राप्त की हैं। यहाँ पढ़ते हुए अनेक ब्रह्मचारियों ने संस्कृत की राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में अनेक पुरस्कार प्राप्त कर गुरुकुल को गौरव प्रदान किया है। गुरुकुल के एक ब्रह्मचारी श्री दीपक कुमार ने एशियन खेलों में शूटिंग में रजत पदक प्राप्त कर गुरुकुल के यश में वृद्धि की थी। अब उनका आगामी ओलम्पिक खेलों के लिये भी चयन हुआ है जिससे गुरुकुल के सभी आचार्य एवं ब्रह्मचारी प्रसन्न हैं। गुरुकुल के अनेक स्नातकों ने पी.एच.डी. व नेट परीक्षायें भी उत्तीर्ण की हैं। कई स्नातक महाविद्यालयों में प्रवक्ता आदि प्रतिष्ठित पदों पर नियुक्त हुए हैं। प्रतिभा विकास की दृष्टि से गुरुकुल भारत के अनूठे व महनीय गुरुकुलों में से एक है। हम इस गुरुकुल को देहरादून का गौरव अनुभव करते हैं। इसके साथ हमारा सौभाग्य है कि

हम भी इस गुरुकुल से एक प्रशंसक के रूप में जुड़े हैं। गुरुकुल के आरम्भ के दिन ६ जून सन् २००० से ही हमें इस गुरुकुल से जुड़ने का सौभाग्य मिला। गुरुकुल के सभी २० उत्सवों में हमारी सहभागिता रही है। स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी का हमें आशीर्वाद मिलता रहता है। आचार्य डा. धनंजय जी तथा गुरुकुल के सभी आचार्यगण भी हमें आदर देते हैं। ब्रह्मचारियों से भी हमें आदर मिलता है। इससे अधिक मनुष्य को क्या चाहिये? हम गुरुकुल की उन्नति की कामना करते हुए स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती तथा आचार्य डॉ. धनंजय, आचार्य चन्द्रभूषण सहित सभी आचार्यों को अपनी शुभकामनायें देते हैं। ईश्वर सबके यश, बल, प्रतिभा, आयुष्य, सत् उत्साह तथा सफलताओं में वृद्धि करें। गुरुकुल ऋषि दयानन्द के मार्ग पर चलकर नित नई उपलब्धियों को प्राप्त करता रहे। **-सौजन्य से...**

श्री मनमोहन कुमार आर्य जी (देहरादून)

शोक-समाचार

पूज्य स्वामी धर्ममुनि (दुग्धाहारी) जी को श्रद्धा सुमन समर्पित

रोहतक : आर्य जगत के तपोनिष्ठ संन्यासी स्वामी धर्ममुनि जी (दुग्धाहारी) का 21 जून, 2020 को अकस्मात् निधन हो गया। पूज्य स्वामी जी का जीवन त्याग, सात्विकता एवं सत्यनिष्ठा का अनुपम उदाहरण रहा है। स्वामी जी ने आत्मशुद्धि आश्रम के माध्यम से यज्ञ, योग एवं संस्कार निर्माण के द्वारा आर्य समाज के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। वेदार्ष महाविद्यालय न्यास परिवार पूज्य स्वामी जी को श्रद्धा सुमन अर्पित करता है।

गुरुकुल के स्नातक वैदिक विद्वान् डॉ. अमरजीत शास्त्री जी की धर्मपत्नी श्रीमती धीरज आर्या जी का निधन

न्यूयार्क, अमेरिका : गुरुकुल झज्जर के स्नातक, आर्य समाज न्यूयार्क के पुरोहित वैदिक विद्वान् डॉ. अमरजीत शास्त्री जी की धर्मपत्नी श्रीमती धीरज आर्या जी का निधन कार दुर्घटना में हो गया। इस दुर्घटन में श्री अमरजीत शास्त्री जी एवं उनके सुपुत्र श्री अर्पण एवं छोटी बेटी को भी चोट आयी है। स्वर्गीया श्रीमती धीरज आर्या सेवाभावी व वैदिकधर्म की निष्ठावान् उपासिका थीं। स्वर्गीया श्रीमती धीरज आर्या जी को वेदार्ष महाविद्यालय न्यास परिवार श्रद्धा सुमन अर्पित करता है।

स्वामी चैतन्य मुनि जी का अकस्मात् निधन

हिमांचल : आर्य समाज के शीर्षविद्वान्, संन्यासी, वेदविद्या के प्राचारक स्वामी चैतन्य मुनि जी का २६ जून २०२० को हृदयाघात से निधन हो गया। यज्ञ, योग-आध्यात्म का स्वामी जी ने आजीवन प्रचार-प्रसार किया। आप सौम्यता की प्रतिमूर्ति थे। वेदार्ष महाविद्यालय न्यास पूज्य स्वामी जी को श्रद्धा सुमन अर्पित करता है।

गुरुकुल के स्नातक श्री उज्ज्वल आर्य जी को मातृशोक

बीदर: वेदार्ष महाविद्यालय ११९ गुरुकुल गौतमनगर, नई दिल्ली के स्नातक श्री उज्ज्वल आर्य जी की माता श्रीमती कोण्डन बाई जी का निधन ३० जून २०२० को हो गया। परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि परिवार को धैर्य प्रदान करे। वेदार्ष महाविद्यालय न्यास पूज्या माता जी को विनम्र श्रद्धांजलि समर्पित करता है।

gurukulpondhadehradun ॥ ओ३म् ॥

श्रीमद्दयानन्द आर्ष ज्योतिर्मठ गुरुकुल, पौन्धा, देहरादून

२० वाँ स्थापना दिवस एवं यजुर्वेद पारायण महायज्ञ (५,६,७ जून २०२०)

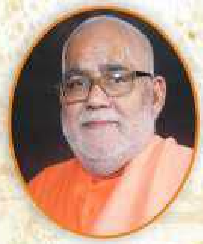

विद्वद्-वरेण्य

डॉ. सोमदेव शास्त्री

प्रो. महावीर

स्वामी आर्यवेश

डॉ. ज्वलन्त कुमार

डॉ. रघुवीर वेदालङ्कार

श्री विनय आर्य

डॉ. धर्मेन्द्र कुमार

श्री विश्रुत आर्य

डॉ. योगेन्द्र याज्ञिक

डॉ. विनय विद्यालङ्कार

आचार्य यज्ञवीर

डॉ. कल्पना आर्या

आचार्या श्रुति शास्त्री

डॉ. अन्नपूर्णा

पं. नरेशदत्त आर्य

पं. भूषण चमन

पं. शिवशंकर रामखिलावन

श्री सौरभ आर्य

श्री वेदप्रकाश

आचार्य मनुदेव वाग्मी

डॉ. रवीन्द्र कुमार

डॉ. अजीत कुमार

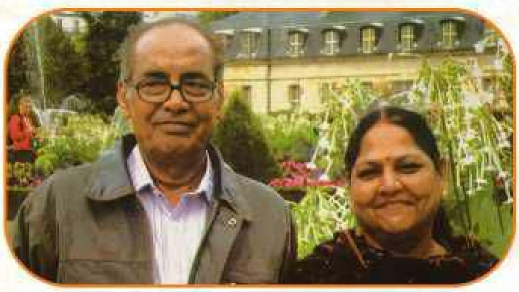

गुरुकुल के अनन्य सहयोगी
एवं कार्यक्रम के प्रेरक

श्रीमती शकुन्तला
धर्मपत्नी श्री सुशील सीकरिया

गुरुकुल परिवार आपका हार्दिक आभार व्यक्त करता है...

पंजीयन संख्या : **UTTBIL/2008/23546** डाक पंजीयन नं. : UA/DO/DDN/397/2019-2021

पतंजलि®

प्रकृति का आशीर्वाद

करोड़ों देशवासियों का
भरोसेमन्द हर्बल टूथपेस्ट

दन्त कान्ति

दन्त कान्ति के लाभ

✓ लौंग, बबूल, नीम, अकरकरा, तोमर, बकुल आदि बेशकीमती जड़ी बूटियों से निर्मित दन्त कान्ति,
ताकि आपके दाँतों को मिले लंबी उम्र व असरदार प्राकृतिक सुरक्षा।

✓ पायरिया, मसूड़ों की सूजन, दर्द व खून आना, सेंसिटिविटी, दुर्गन्ध एवं दाँतों के पीलेपन आदि को दूर करे।

✓ कीटाणुओं से लम्बे समय तक बचाकर दे दाँतों को प्राकृतिक सुरक्षा कवच।

पूरी दुनिया अब नैचुरल प्रोडक्ट्स को अपना रही है
आप भी पतंजलि के नैचुरल प्रोडक्ट्स अपनाइए और प्रकृति का आशीर्वाद पाइए

आवाहन– राष्ट्र के जागरुक व्यापारियों व ग्राहकों से हम विनम्र आवाहन करते हैं कि करोड़ों देश भक्त भारतीयों की तरह, आप भी पतंजलि के उत्पादों को अपनी दुकानों व दिलों में सर्वोच्च प्राथमिकता देकर जन–जन तक पहुँचाएं और देश की सेवा व समृद्धि में योगदान दें। जिससे महात्मा गाँधी, भगत सिंह व राम प्रसाद बिस्मिल आदि सभी महापुरुषों के स्वदेशी अपनाने के सपने को मिलकर साकार कर सकें।

पतंजलि आयुर्वेद के लगभग 500 उत्पाद हैं, ये शुद्ध खाद्य उत्पाद व हर्बल सौन्दर्य उत्पाद हमारे पतंजलि स्टोर्स के साथ ओपन मार्केट की दुकानों पर भी उपलब्ध हैं।

मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक एवं स्वामी : आचार्य धनञ्जय द्वारा श्रीमद्दयानन्द आर्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुल, दून वाटिका-२ पौंधा, देहरादून (उत्तराखण्ड) से प्रकाशित एवं जयरति प्रिन्टिंग प्रेस, ३५ कांवली रोड, देहरादून से मुद्रित।
मुद्रण तिथि - ३ जुलाई २०२० :: डाक प्रेषण तिथि - ८ जुलाई २०२०